श्री अरविन्द कर्मधारा

15 अगस्त, 2019 वर्ष 49 अंक 5

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

24 नवम्बर 2018

वर्ष-48 - अंक-4

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (नि:शुल्क उपलब्ध)

कृपया **सब्सक्राइब करें-**

sakarmdhara@gmail.com

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26524810, 26567863

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

लक्ष्य-प्राप्ति

चाहे तपस्या द्वारा हो या समर्पण द्वारा, बस इसका कोई महत्व नहीं है, महत्वपूर्ण बस यही चीज है कि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख हो। जब एक बार कदम सच्चे मार्ग पर चल पड़े तो कोई वहाँ से हटकर ज्यादा नीची चीज की ओर कैसे जा सकता है ? अगर आदमी दृढ़ बना रहें तो पतन का कोई महत्व नहीं. आदमी फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर आदमी अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नहीं हो सकती। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें प्रेरित करती है, और वह निशिचत रूप से है, तो लड़खड़ाने, गिरने या श्रद्धा की असफलता का परिणाम में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ेगा। संघर्ष समाप्त होने तक चलते जाना चाहिये। सीधा, खुला हुआ और कंटकहीन मार्ग हमारे सामने है।

-श्रीअरविन्द

इस अंक में...

1. प्रार्थना और ध्यान 4

2. श्री अरविन्द की महत्ता 6

3. कारावास की कहानी (भाग-1) 27

4. कारावास की कहानी (भाग-2) 33

5. श्री सुरेन्द्रनाथ ज़ौहर 'फ़क़ीर' 44

6. काम 60

7. तारा दीदी का जन्मदिन 62

8. आश्रम के अन्य कार्यक्रम 65

9. योगा दिवस 2019 66

15 अगस्त, 2019

प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ

यह सब कोलाहल किस लिये, यह दौड़-धूप, यह व्यर्थ की थोथी हलचल किस लिये? यह बवंडर किस लिये जो मनुष्यों को झंझावात में फँसे हुये मक्खियों के दल की भाँति उड़ाये ले जाता है? यह समस्त व्यर्थ में नष्ट हुई शक्ति, ये सब असफल प्रयत्न कितना शोकप्रद दृश्य उपस्थित करते हैं। लोग रस्सियों के सिरे पर कठपुतलियों की भाँति नाचना कब बन्द करेंगे? वह यह भी नहीं जानते कि कौन या क्या वस्तु उनकी रस्सियों को पकड़े उनको नचा रही है। उनको कब समय मिलेगा शांति से बैठकर अपने-आप में समाहित होने का, अपने-आपको एकाग्र करने का, उस आंतरिक द्वार को खोलने का जो तेरे अमूल्य खज़ाने, तेरे असीम वरदान पर परदा डाल रहा है?

अज्ञान और अंधकार से भरा हुआ, मूढ़ हलचल तथा निरर्थक विक्षेपवाला उनका जीवन मुझे कितना कष्टप्रद और दीनहीन लगता है जबकि तेरे उत्कृष्ट प्रकाश की एक किरण, तेरे दिव्य प्रेम की एक बूँद इस कष्ट को आनन्द के सागर में परिवर्तित कर सकती है। हे प्रभु मेरी प्रार्थना तेरी ओर उन्मुख होती है, आखिर ये लोग तेरी शान्ति तथा उस अचल और अदम्य शक्ति को जान लें तो अविचल धीरता से प्राप्त होती है। और यह धीरता केवल उन्हीं के हिस्से आती है जिनकी आँखें खुल गईं हैं और जो अपनी सत्ता के जाज्वल्यमान केन्द्र में तेरा चिन्तन करने योग्य बन गये हैं।

परन्तु अब तेरी अभिव्यक्ति की घड़ी आ गयी है और शीघ्र ही आनन्द का स्तुति-गान सब दिशाओं से फूट पड़ेगा। इस घड़ी की गम्भीरता के आगे मैं भक्तिपूर्वक शीश नवाती हूँ।

15 अगस्त, 2019

हे दिव्य स्वामी, प्रदान कर कि यह दिन हमारे लिये तेरे विधान के प्रति अधिक पूर्ण आत्मनिवेदन का, तेरे कर्म के प्रति अधिक सर्वांगीण समर्पण का, अधिक समय निज-विस्मृति का, अधिक विशाल प्रकाश का तथा अधिक पवित्र प्रेम का अवसर बने; और यह भी प्रदान कर कि तेरे साथ अधिकाधिक गम्भीर और अटूट अन्तर्मिलन द्वारा हम उत्तरोत्तर अधिक अच्छी तरह तेरे योग्य सेवक बनने के लिये अपने-आपको तेरे साथ एकीभूत करें। हमसे समग्र अहंता, तुच्छ अभिमान, सारा लोभ और सारा अंधकार दूर कर ताकि तेरे दिव्य प्रेम से पूर्णतया प्रज्जवलित होकर संसार में हम तेरी दीपिकाएँ बनें।

पूर्व के सुवासित धूप के सफेद धुएँ के समान मेरे हृदय से एक मौन गीत उठता है।

और पूर्ण समर्पण के प्रशांत भाव में इस दिनोदय के समय मैं तुझे नमस्कार करती हूँ।

पूर्व के सुवासित धूप के सफेद धुएँ के समान मेरे हृदय से एक मौन गीत उठता है।

और पूर्ण समर्पण के प्रशांत भाव में इस दिनोदय के समय मैं तुझे नमस्कार करती हूँ।

15 अगस्त, 2019

श्री अरविन्द की महत्ता

नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

समय-समय पर पृथ्वी पर कुछ ऐसे पुरुष आते हैं जो हमारी तरह नहीं होते। यह ठीक है कि देखने-सुनने में वे दूसरों से भिन्न नहीं होते, पर यह भी सत्य है कि हममें और उनमें इतना अधिक अन्तर होता है जितना यहाँ के सुख और स्वर्ग के आनन्द में। उनके आकाश से हमारा जीवन प्रकाशित होता है। पृथ्वी के पुत्रों में वह देवताओं के पुत्र होते हैं। ऐसे देवपुत्रों में श्री अरविन्द की बचपन से ही गणना थी।

जिन श्री अरविन्द को हम आज भी पहचान नहीं सके हैं उन्हें कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने आज से 50 वर्ष पूर्व पहचाना था और एक कविता लिखकर वंदना की थी। जितना महान हमारा देश है, उतने ही महान श्री अरविन्द थे। भारतवर्ष जो कभी था और सुदूर भविष्य में जो होने को है, उसका दिव्य प्रकाश हमने श्री अरविन्द में देखा। श्री अरविन्द के विचार में संसार में मानव सभ्यता का काल पक चुका है। अब एक नया युग आने वाला है जिसमें मन के स्थान पर उससे भी ऊँची चेतना जीवन का नियंत्रण करेगी। इसी युग को लाने के लिए वह जीवन-भर अपनी योग-साधना से प्रयत्न करते रहे।

ग्यारह वर्ष की उम्र से ही वह सोचने लगे थे कि दुनिया में कोई बहुत बड़ी उथल-पुथल आने वाली है और उसमें उनको भी भाग लेना होगा। 18 वर्ष की आयु में उनकी यह धारणा दृढ़ हुई। वे जब विलायत में पढ़ते थे, तभी उन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व होम करने की ठान ली थी।

जब वे राजनीति में उतरे, देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने का किसी को कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। श्री अरविन्द ने देश को एक राजनीतिक दर्शन ही नहीं दिया, उसे क्रियान्वित करके भी दिखा दिया। एक ऐसा ज़माना था जब कलकत्ता का कोई पत्र श्री अरविन्द का लेख छापने का

साहस नहीं करता था। उन्होंने कुछ ही दिनों में देश-भर में क्रांति की ऐसी लहर दौड़ा दी कि लोग तन से ही नहीं मन से भी स्वदेशी बन गए। उन्होंने हमें सिखाया **"सबसे पहले भारतीय बनो।"**

श्री अरविन्द के राजनैतिक जीवन में भी गीता पढ़ी जा सकती थी। उनमें संसार को वेद-उपनिषद् का जीता-जागता स्वरूप देखने को मिला। श्री अरविन्द का जीवन एक प्रयोगशाला था। उस प्रयोगशाला से उन्होंने एक नई दुनिया को जन्म दिया। इस प्रयोगशाला में वह जीवन-भर अनुसंधान करते रहे। श्री अरविन्द का सपना था – एक नई दुनिया, नया दर्शन, नया युग, नई हवा, नया मनुष्य-इतना नया जितना मनुष्य पशु के लिए नया था। **उनकी दृष्टि मानव के भविष्य पर टिकी थी।**

संसार के जितने महान कार्य हैं, वे सब कभी किसी ना किसी के सपने ही थे। जब सपना आ गया है तो एक ना एक दिन वह रूप भी ले ही लेगा। यह सपना कैसे सच होगा, यह भारत ही दिखा सकता है और समय आने पर दिखाएगा। 21 वर्ष की आयु तक श्री अरविन्द की योग में रुचि नहीं थी, फिर भी वह इतने बड़े योगी बन गये।

जन्म

1872 का साल 15 अगस्त की पुण्य तिथि। इसी दिन पराधीन भारत की कलकत्ता नामक नगरी में सुबह साढ़े चार बजे श्री अरविन्द का जन्म हुआ था। उस समय कौन जानता था कि यह दिव्य तारा भारतीय आकाश में सुनहरे सितारे की तरह चमकेगा। हमारी आज़ादी का दिन तो चुना गया था 3 जून, 1948; किन्तु बदलकर उसे कर दिया गया 15 अगस्त, 1947। किसने किया ऐसा? क्यों किया? यह क्या अपने-आप हुआ?

बंगाल सदा से भारत का रत्न-गर्भित प्रांत रहा है। यहाँ हुगली नाम की एक नगरी है। राममोहन राय और श्रीरामकृष्ण परमहंस का यहीं जन्म हुआ था। इस नगरी के पास से हुगली नाम की नदी भी बहती है। इसी के किनारे कोननगर नामक एक छोटा सा कस्बा है। यहीं श्री अरविन्द के पिता का जन्म हुआ था। उसका नाम था कृष्णधन।

19 वर्ष बाद की उम्र में डा0 कृष्णधन का विवाह उस समय के सुप्रसिद्ध नेता राजनारायण बोस की कन्या से हुआ। उस समय वह 21 वर्ष की थीं, उनका नाम था स्वर्णलता। वह इतनी सुन्दर थीं कि लोग उन्हें 'रंगपुर का गुलाब' कहा करते। बंगाल के लोगों में उन दिनों साहब बनने की धुन सवार थी। दल के दल युवक विलायत जा रहे थे। जिसमें जितना अंग्रेज़ीपन होता, जो जितना

ठाठ से रहता उसकी उतनी कदर होती। राजनारायण बोस ने भी अंग्रेज़ी शिक्षा पाई थी पर औरों की तरह उन्होंने अपने को विलायती साँचे में ढलने नहीं दिया। भारतीय गौरव से वह अपने को गौरवान्वित मानते थे। भारतीय सभ्यता को वह किसी दशा में नीचा देखना नहीं चाहते थे।

विवाह के बाद जब डा0 कृष्णधन विलायत जाने लगे तो उनके मन में जो शंका उठी थी वह सही होकर रही। विलायत से डा0 कृष्णधन पूरे साहब बनकर लौटे और भारत में 'साहब डाक्टर' नाम से विख्यात हुए। परन्तु बाहर से पूर्ण विलायती होने पर भी वह मन से पूर्ण भारतीय थे। बीज रूप से पिता का यह गुण श्री अरविन्द में भी आया। भारतीयों में डा0 घोष ही सबसे पहले सिविल सर्जन बने थे। उनके पहले आई0 एम0 एस0 की उपाधि किसी भारतीय को नहीं मिली। उस समय इस पद का बड़ा मान था। खुलना में उनकी कीर्ति सबसे अधिक स्थापित हुई। वहाँ के घर-घर में, जन-जन की जिह्वा पर उनका नाम था। दूसरों की आँख के आँसू पोंछने में, बिलखते होंठों पर हँसी दौड़ा देने में वह अपने बच्चों तक की सुध भूल जाया करते थे। उनका घर पूर्व और पश्चिम का मिलन-स्थल था। श्री अरविन्द डा0 कृष्णधन के तीसरे पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम उन्होंने विनयभूषण रखा और दूसरे का मनमोहन। तीसरे का नाम 'अरविन्द' रखा।

पिता-पुत्र

अपने बच्चों को डा0 साहब अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। उन्हें स्वर्ग की परवाह नहीं थी, पर बच्चे आकाश में शुक्र तारे की तरह चमकें, यही उनकी साध थी। श्री अरविन्द के प्रति उनकी शुरु से बड़ी अच्छी धारणा थी। अपने साले को उन्होंने एक पत्र में लिखा था –

"मुझे पूर्ण आशा है, 'अर' ऐसे सुचारू रूप से राजसूत्र का संचालन करेगा कि देश उससे गौरवान्वित होगा।" पाँच वर्ष की आयु में ही श्री अरविन्द माता की स्नेहमयी गोद से अलग कर दिए गए और दार्ज़िलिंग के लारेंट कॉनवेंट में पढ़ने के लिए भेज दिए गए। डा0 घोष को इतने से भी संतोष नहीं हुआ सन् 1879 में अपने तीनों बच्चों को साथ लेकर वह विलायत चले गए और उन्हें एक अंग्रेज़ पादरी के सुपुर्द कर चले आए। इंग्लैंड पहुँचने के पूर्व जहाज़ पर ही इनके कनिष्ठ पुत्र का जन्म हुआ। इस लड़के ने भी देश के लिए बड़ा काम किया। जो भी उसके संसर्ग में आए, देश के लिए मर मिटने के हेतु पागल हो उठे। इसी लड़के का नाम था वारीन्द्रकुमार घोष। जो बड़ा होकर प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हुआ। डा0 घोष प्यार से बालक अरविन्द को 'अर' कहकर पुकारा करते थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका 'अर' बड़ा आदमी बने। बड़ा आदमी बनना यानी, आई0 सी0 एस0 बनना। यही थी उन दिनों बड़े आदमी बनने की परिभाषा। पिता का मन रखने

के लिए श्री अरविन्द आई0 सी0 एस0 की परीक्षा में दाखिल हो गए और सम्मान सहित पास भी हो गए, पर घुड़सवारी में कन्नी काट गए।

उन्होंने ऐसा क्यों किया? हाथ में आया सोना क्यों गँवा दिया? देश के लिए इतना त्याग उन दिनों नई-सी बात थी। उनके पहले देश के हित में इतना बड़ा त्याग किसी ने नहीं किया था। पिता तो चाहते थे कि उनका 'अर' भारतीय आबोहवा से दूर रह तो फिर उनके जीवन में देश-प्रेम का बीज डाला किसने? इसका श्रेय उनके पिता को ही था। देश-प्रेम का बीज भी उन्होंने ही बोया था। भारत में विदेशी शासकों के जो अत्याचार होते रहते थे, उनकी खबरें वह अपने बच्चों को विलायत में अखबार की कतरनों द्वारा पहुँचाया करते थे। उन्हें पढ़-पढ़कर बालक अरविन्द का कोमल हृदय तिलमिला उठता।

पिता तो श्री अरविन्द को आई0 सी0 एस0 अरविन्द देखने के लिए पलकें बिछाए बैठे थे, पर हठात् उनको एक तार मिला। तार में तूफान भरा था। श्री अरविन्द की बहन का कहना है कि वह गोधूलि का समय था और डा0 कृष्णधन टमटम में घूमने के लिए जाने वाले थे। एक पैर पायदान पर रखा ही था कि तार मिला। तार में लिखा था—जिस जहाज़ से श्री अरविन्द आ रहे हैं, वह डूब गया। तार पढ़ते ही वह धड़ाम से गिर पड़े और 'अर', 'अर' कहते चल बसे।

भारत के इतिहास में पुत्र-स्नेह का ऐसा सुन्दर दृष्टांत यह एक ही मिलता है। पर जिस जहाज़ पर श्री अरविन्द थे, वह भला कैसे डूब सकता था! परन्तु कितने डूबतों को उबारा है उनके 'अर' ने, यह देखने के लिए डॉ0 घोष जीवित नहीं रहे।

विद्यार्थी–जीवन

शिक्षक वह है जो छात्रों के जीवन को ऐसा कुछ दे जो उनके जीवन की निधि बने। जिस पादरी की देखरेख में डॉ0 कृष्णधन अपने पुत्रों को छोड़ आए थे, वह लेटिन के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्होंने बालक अरविन्द को लेटिन और अंग्रेज़ी की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि जब वे लंदन के सेंट पाल स्कूल में दाखिल हुए तो उनकी प्रतिभा देखकर वहाँ के हेडमास्टर मुग्ध हो गए और स्वयं उन्हें ग्रीक पढ़ाने का भार लिया। वे बड़े पारखी थे। जो लड़का उनकी नज़र में 'ब्राइट ब्वाय' साबित होता, उसे ऊपर उठाने में वह कोई कोर-कसर नहीं रखते थे। बालक अरविन्द को भी परखते उन्हें देर नहीं लगी।

15 अगस्त, 2019

किन्तु स्कूली पुस्तकें पढ़ने में ही आपका समय नहीं जाता था। बाहरी पुस्तकों के पढ़ने में भी आप डूबे रहते थे। वह बड़ी छोटी उम्र से कविता लिखने लगे थे। कविता की जो धारा इस उम्र में फूटी, उससे आपका सारा जीवन प्लावित होता रहा। उन्होंने जीवन-भर साधना करके जो कुछ पाया उसे वह हमारे लिए 'सावित्री' नामक गद्यकाव्य में संजोकर रख गए हैं। यह उनकी वह रचना है जिसमें युग-युग तक हमें ऋषि अरविन्द के दर्शन होते रहेंगे।

लंदन जैसे शहर में बैठकर श्री अरविन्द ने मुनि-कुमारों जैसा जीवन बिताया था। उन्हें साल-भर सुबह सैंडविच के दो टुकड़े और शाम को एक आने का कुछ खाकर दिन गुज़ारना पड़ता था, फिर भी उन्होंने पढ़ाई में कभी ढिलाई नहीं आने दीं। उनको दुःख कभी दबा नहीं सका। पांडिचेरी आने पर भी ऐसा समय आया जब उनके पास केवल चार आने पैसे बच रहे थे। तौलिये के अभाव में वे स्नानघर से बालों का पानी हाथ से निचोड़ते बाहर आते। एक टूटी खटिया थी, उसी पर एक कोने में सोते।

विदेश में विदेशी छात्रों के बीच श्री अरविन्द ने छात्रवृत्ति प्राप्त की थी। ग्रीक और लेटिन में उन्होंने इतने नम्बर लिए जितने तब तक किसी ने नहीं लिए थे। एक मज़ेदार बात यह थी कि उनके बाद का स्थान पाया था विचकाफ्ट ने, जो इनके सहपाठी थे। आगे चलकर इन्हीं के इजलास में अलीपुर केस का विचार हुआ था। विचकाफ्ट थे विचाराधीश और श्री अरविन्द थे विचाराधीन।

एक बार एक अंग्रेज़ी अफसर ने अपने एक भारतीय साथी से पूछा, "आप तो बंगाली हैं ना?" आप क्या अरविन्द घोष को जानते हैं? मैं उसके कैम्ब्रिज जीवन का साथी हूँ। उन दिनों प्राचीन भाषाओं में वह अपना सानी नहीं रखते थे। अफसोस कि उनका जन्म भारत में हुआ। अगर वह अंग्रेज़ होते तो अपने पांडित्य के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हो जाते।

इससे भी बढ़कर एक और गुण था श्री अरविन्द के बाल-जीवन में। वह था- उनका चरित्र-बल और संकल्प-शक्ति। उससे पता चलता था कि भविष्य में यह युवक क्या होने को है। उनके कॉलेज के अध्यक्ष ने लिखा था –"घोष का चरित्र आदर्श-स्वरूप है। अंग्रेज़ी भाषा में उसका ज्ञान औसत छात्रों से कहीं अधिक है और अंग्रेज़ युवकों से वह कहीं अच्छी अंग्रेज़ी लिख सकता है। उसमें योग्यता ही नहीं, चरित्र-बल भी है।"

बचपन से 14 वर्ष अंग्रेज़ों के बीच रहकर भी युवक अरविन्द अरविन्द ही रहे। तिल-भर साहब अरविन्द नहीं बने। आप सदा भारतीय बने रहने में गौरव अनुभव करते थे। विलायत से विदेशी बनने के बदले वे स्वदेशी बनकर लौटे।

किशोरावस्था के स्वप्न

विद्यार्थी-जीवन से ही राजनीति ने श्री अरविन्द के जीवन में प्रवेश किया था। बाहर से श्री अरविन्द एक शांत, शिष्ट, कोमल-हृदय युवक-से लगते, पर भीतर से वे कितने ज्वालामय थे, यह स्वदेशी युवक श्री अरविन्द में देखने को मिलता है। उन दिनों उनकी लेखनी से बिजली निकलती थी। इसका कुछ आभास उनके विद्यार्थी-जीवन में भी देखने को मिलता है।

सन् 1892 में दादाभाई नौरोजी जब विलायत में एम0 पी0 बनने के लिए खड़े हुए तब श्री अरविन्द वहीं थे। वहीं उनकी खुशामदी नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस किया था उन्होंने। इन्हीं दिनों लंदन में एक क्रांतिकारी सभा कायम हुई थी। इसमें श्री अरविन्द के भाई भी शरीक हुए थे। प्रत्येक ने इसमें प्रतिज्ञा ली थी कि देश के लिए उनमें से हरेक कोई ऐसा कार्य करेगा जो विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने में सहायक हो। बम फेंकने की बात भी, कहते हैं, इन्हीं दिनों श्री अरविन्द के मन में आयी।

यह वह जमाना था जब विदेशी शासन के विरुद्ध कोई जीभ हिलाने तक का साहस नहीं कर पाता था। पर सत्ताधारियों की राजधानी में बैठकर उनके शासन के विरुद्ध आप ऐसी आवाज़ उठाते थे जैसी भारत में कभी नहीं सुनी गई। इसका मूल्य चुकाकर भी आप अपने पथ से विरत नहीं हुए। भारत आते ही एक कल्पित नाम से उनके ऐसे-ऐसे लेख निकलने लगे कि लोग दंग रह गए। न्यायमूर्ति रानाडे जैसे पुरुष के कान खड़े हो गए।

देश को आज़ाद कराने हेतु जो आग उनके भीतर सुलग रही थी, उसे आप सारे देश में फैलाना चाहते थे। शायद उनके मन में ही पहले-पहल यह बात आयी कि खुशामदी नीति से कुछ हासिल नहीं होने का। देशमाता बलिदान माँगती है। बलिदान देने के लिए कमर कसकर आग से खेलना होगा।

उनके जीवन में अभी योग-जीवन का संगीत आरंभ नहीं हुआ था। उनके जीवन में भगवान अभी नहीं आए थे। देश ही उनके लिए भगवान था। उस युग के श्री अरविन्द का हृदय देश-प्रेम

के अमृत से कैसा लबालब भरा था, इसका पता उन पत्रों से लगता है जो उन्होंने अपनी पत्नी को लिखे थे: "भगवान को धन समर्पित करने का अर्थ है पवित्र कार्य में खर्च करना...

बताओ क्या तुम मेरी सहधर्मिणी होकर इस धर्म में मेरा साथ दोगी? मैं एक साधारण व्यक्ति की तरह रहना चाहता हूँ। अपने भोजन और वस्त्र पर उतना ही खर्च करना चाहता हूँ जितना एक मामूली आदमी कर पाता है:"

"मेरा दूसरा सपना, जो अभी हाल में ही मुझपर सवार हुआ है, यह है कि जैसे भी हो भगवान का दर्शन प्राप्त किया जाए-एक मास के अन्दर ही अनुभव करने लगा हूँ कि धर्म की बात झूठी नहीं है।"

इन बातों से प्रकट होता है कि इस युवक के मन में कैसे-कैसे सपने पल रहे थे।

महान् तैयारी

जब श्री अरविन्द विलायत में थे तो तभी उनकी बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ से भेंट हुई। वे श्री अरविन्द से मिलकर इतने प्रभावित हुए कि उसी समय अपने राज्य में रहने का आग्रह किया। 1893 में श्री अरविन्द बड़ौदा के लिए रवाना हुए।

उस समय वेश-भूषा से वे मानो पूरे साहब ही थे। अपनी मातृभाषा में एक शब्द भी नहीं बोल पाते थे। किन्तु कुछ दिनों में ही उन्होंने अपने-आपको इतना बदल डाला कि जब दीनेन्द्र कुमार उन्हें बंगला पढ़ाने बड़ौदा आए तो श्री अरविन्द को देखकर बड़े हैरान हुए –"पाँव में नोकदार जूते, देशी मिल की धोती, मोटी अचकन, सिर पर लम्बे-लम्बे बाल-यही हैं, सात-सात विदेशी भाषाओं के ज्ञाता अरविन्द घोष? विलायत में पाश्चात्य संस्कृति का तो खूब छककर पान किया था पर भारतीय संस्कृति में वे बिलकुल कोरे रह गए थे। इस कमी को बड़ौदा में पूरा किया।"

चार वर्ष में ही उनका संस्कृत में इतना प्रवेश हो गया कि वे कालिदास की रचनाओं का मूल से अंग्रेज़ी में अनुवाद करने लगे। पुस्तकों को पढ़ने में वे डूब जाते। उनके चारों ओर पुस्तकों के ढेर लगे रहते। पढ़ना उनके लिए खेल था और लिखना विनोद।

श्री अरविन्द के जीवन की सभी बातें निराली हैं। बड़ौदा के राजदरबार में रहने वाले किसी व्यक्ति से कोई आशा कर सकता है कि कोई इतने कम सामान में अपना निर्वाह कर लेगा।

किसी ने ठीक ही कहा है, “महानता के लक्षण बड़े-बड़े कार्यों से नहीं वरन् जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से परखे जाते हैं।”

बम केस की गिरफ्तारी के समय कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर ने जब श्री अरविन्द के कमरे पर धावा बोला तो यह देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई कि श्री अरविन्द जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति एक मामूली-से मकान में रहते हैं, ज़मीन पर सोते हैं।

जब मि0 नेविनसन श्री अरविन्द से मिलने गए तो एक बड़े हॉल में एक चटाई बिछी देखकर दंग रह गए। श्री अरविन्द का बड़ौदाकालीन एक छात्र लिखता है : “श्री अरविन्द अपने रहन-सहन में बिलकुल सादे थे। नारियल की रस्सियों से बुनी एक खाट थी, उसी पर एक चादर डालकर सोते थे।” एक बार उसने पूछा -“इतने सख्त बिस्तर पर क्यों सोते हैं?”

इस पर उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, “प्यारे बच्चे, क्या तुम नहीं जानते कि मैं एक ब्रह्मचारी हूँ? हमारे शास्त्रों में कहा है कि ब्रह्मचारी को कोमल शय्या पर नहीं सोना चाहिये।”

क्रोध करना तो श्री अरविन्द जानते ही नहीं थे। उनका भोजन बनाने के लिए जो रसोईया था, घर की देख-भाल करने के लिए जो नौकर थे, वे इतने लापरवाह और आलसी थे कि दूसरे के यहाँ दो-एक दिन भी ना टिक पाते। पर एक क्षण के लिए भी श्री अरविन्द को किसी ने अप्रसन्न होते नहीं देखा।

‘वन्दे मातरम्’ के दिनों में सुधीर सरकार उनके साथ रहा करते। एक बार उन्हें मलेरिया हो गया। दो महीने से पीड़ित देखकर आबोहवा बदलने के लिए श्री अरविन्द उन्हें देवघर ले गए। एक दिन की बात है, जब श्री अरविन्द ‘वन्दे मातरम्’ के लिए लेख टाइप कर रहे थे, सुधीर सरकार कै कर बैठे। उसकी छींटें कागज़ों पर जा पड़ीं। क्रुद्ध होना तो दूर रहा, श्री अरविन्द ने इतना भी नहीं कहा, ‘क्या किया?’ बल्कि उठकर वमन उठाने लगे।

रूपये-पैसे का मोह तो उन्हें छू तक नहीं गया था। उन्हें तीन महीने का वेतन एक थैली में एक साथ मिला करता था। उसे लाकर वह एक ट्रे में उंडेल देते। वह वहीं पड़ा रहता। जो खर्च करना होता, उठा लेते।

किसी के पूछने पर कि “आप पैसों को इस प्रकार क्यों रखते हैं, वे हंसकर बोले, यह इस बात का प्रमाण है कि मैं भले और विश्वस्त व्यक्तियों के बीच रहता हूँ।” “मेरा हिसाब तो भगवान

रखते हैं। वे मुझे उतना ही देते हैं जितने की मुझे आवश्यकता होती है। तो फिर इन बातों के पीछे क्यों सिर खपाएँ?"

लोकप्रियता उन्हें किस हद तक प्राप्त हुई थी। सूरत कांग्रेस के बाद जब वे बड़ौदा आए, वहाँ के तत्कालीन प्रिंसिपल ने हुक्म दिया कि कॉलेज छोड़कर कोई छात्र उनका स्वागत करने ना जाए। परन्तु उनका जलूस जैसे ही कॉलेज के पास पहुँचा खिड़की-जंगलों से कूद-कूदकर लड़के भागे और उनके रथ घोड़ा हटाकर खुद रथ को खींचकर ले चले।

बड़ौदा की एक और रोचक घटना सुनिए: मंत्रियों के साथ कभी-कभी गायकवाड़ एक योगी का दर्शन करने जाया करते। उनकी आयु 400 वर्ष बताई जाती थी। एक दिन श्री अरविन्द भी उनके साथ हो लिए।

मण्डली के आगे-आगे थे गायकवाड़। वृद्ध योगी ने नज़र उठाकर गायकवाड़ को देखा भी नहीं और तेजी से श्री अरविन्द के पास जा पहुँचे और बोले : "आ गए तुम? ना जाने कितने वर्षों से तुम्हारी आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अब मेरा कार्य शीघ्र ही पूरा होगा। मेरा समय शीघ्र ही पूरा होगा। मैं शीघ्र ही सिधार जाऊँगा। समय पर तुम्हारी सहायता करूँगा।"

एक और भविष्यवाणी उनके बारे में मनोरंजक है। जब श्री अरविन्द जेल में थे, उनकी दादी ने विशुद्धानन्द से पूछा, "मेरे 'अर' का क्या होगा?" उत्तर में उन्होंने कहा, "भगवती माँ ने उनको अपनी गोद में ले लिया है वे अब तुम्हारे नहीं रहे। वे अब सारे विश्व के हैं। उनकी कीर्ति से विश्व सुरभित हो उठेगा।"

विख्यात लेखक श्री के0 एम0 मुन्शी श्री अरविन्द के छात्रों में से थे। अपनी रचनाओं में जगह-जगह उन्होंने श्री अरविन्द के संबंध में चर्चा की है। उनका कहना है कि बड़ौदा कॉलेज के छात्रों में रह-रहकर देश-प्रेम की जो तरंगें उठतीं, उसका बहुत कुछ श्रेय श्री अरविन्द को था।

जब भारत में बड़े-बड़े नेता अंग्रेज़ी राज्य को भगवान की देन मान रहे थे, इन्होंने देश के सामने स्वतन्त्रता का प्रस्ताव ही नहीं रखा, वरन् उसे कैसे हासिल किया जा सकता है, इसकी राह भी बतायी जिसे आगे चलकर गाँधी ने इतनी सफलता के साथ अपनाया।

15 अगस्त, 2019

स्वदेशी-युग के श्री अरविन्द

महाभारत में कहा गया है – “जन-नायक वह है जो काल की गति को बदल दे।” 1906 से 1910 तक श्री अरविन्द राजनीति के खुले मैदान में रहे। पर इन चार वर्षों में ही जो कुछ हुआ वह ‘स्वदेशी-युग’ के नाम से जाना लगा।

आज कांग्रेस के पास शासन-बल है। तब उसके पास त्याग और तपस्या का बल था। श्री अरविन्द से ही वह युग आरम्भ हुआ था।

इस त्याग और तपस्या का देश के होनहार युवकों पर क्या प्रभाव पड़ा था, यह कोई कम प्रेरणापूर्ण कहानी नहीं है।

युवक सुभाषचन्द्र बोस जब आई0 सी0 एस0 की परीक्षा पास कर चुके तो उनके मन में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। उनके पिता तो चाहते थे कि वे जल्दी से जल्दी किसी उच्च ओहदे पर आसीन हो जाएँ और हज़ारों पर हुकूमत चलाएँ, पर जननी जन्मभूमि शहीदों का ताज लिए खड़ी थी। सुभाष की माता दीन थीं, दुर्बल थीं, और पिता के आगे उनका कोई ज़ोर नहीं चलता था। पिता को ‘ना’ कहने का वह साहस नहीं कर पा रहे थे। जब वे कुछ निर्णय नहीं कर पाए थे, तब श्री अरविन्द की मूर्ति, उनका त्याग, उनकी आँखों के सामने चमक उठे और पिता के हज़ार विरोध करने पर भी उन्होंने अपना पथ चुन लिया। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं :

“श्री अरविन्द का ज्योतिर्मय उदाहरण मेरी आँखों के सामने नाच रहा है। उस आदर्श की जो माँग है उसे पूरा करने को मैं तैयार हूँ।”

जब लोगों ने देश-सेवा और राज-सेवा दोनों ही एक साथ करने की बात कही और रमेशचन्द्र दत्त का उदाहरण पेश किया तो अपने भाई शरत् बोस को उन्होंने लिखा :

“श्री अरविन्द का पथ मेरे लिए अधिक प्रेरणाप्रद है, उच्च और स्वार्थरहित है, यद्यपि रमेशदत्त के पथ से कहीं ज्यादा कंटकाकीर्ण है।”

उन दिनों लोगों की समझ ही नहीं आता था कि भारत जैसा सब प्रकार से दीन-हीन देश भला स्वराज्य की कल्पना कैसे कर सकता है। वे कहते थे – “यह सपना है, सपना।”

15 अगस्त, 2019

श्री अरविन्द भारत को इतना गया-गुजरा नहीं मानते थे। अपने विचारों को उन्होंने ऐसे शब्दों में रखा कि वे सदा के लिए लोगों के हृदय में बैठ गए। देशभक्ति के साथ आत्मशक्ति का जो मेल उन्होंने बिठाया वह उनके जीवन का उज्ज्वलतम पृष्ठ है।

बम्बई में जनता को नमस्कार कर जब वे बोलने लगे तो लगा, राष्ट्रीयता का कोई पैगम्बर बोल रहा है, भारत की नसों में नई जान फूँकने के लिए वह कोई पैगाम लाया है।

देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वालों को उन्होंने कर्मयोगी माना और अपने त्याग से, तपस्या से देश के राष्ट्रीय जीवन को तपोमय बना दिया।

भारत में जितने गर्वनर जनरल आए हैं उनमें लार्ड कर्ज़न सबसे अधिक जबरदस्त था। बंगाल में जागृति के जो लक्षण दिखायी दे रहे थे सब उसे फूटी आँख नहीं सुहाते थे। इसलिए उसने एक मनसूबा गाँठा। किसी तरह भारत की दो प्रधान जातियों में होड़ जगा देना जिससे वे एक-दूसरे के दुश्मन बन बैठें और सदा आपस में लड़ते-भिड़ते रहें। जब ऐसा होगा तभी भारत में अंग्रेजों का राज्य सदा कायम रह सकता है।

बड़ौदा में बैठकर श्री अरविन्द इस चतुर खिलाड़ी की सभी चालें देख रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि यदि बंगाल के दो टुकड़े कर दिए तो ऐसा आन्दोलन किया जाएगा कि विदेशी शासन के होश ठिकाने लग जाएँ।

बंगाल के दो टुकड़े कर दिए गए। उस दिन सारे बंगाल में शोक मनाया गया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। दल के दल युवक स्कूल-कॉलेज छोड़कर स्वदेशी आन्दोलन में कूद पड़े।

यहीं से जनता ने नेता का साथ देना शुरु किया और वास्तविक जन-आन्दोलन आरम्भ हुआ। यहीं से हम सत्ताधारी को यह दिखाने में समर्थ हुए कि यदि सीधे तौर से कुछ देने के लिए राज़ी नहीं होंगे तो हम उनकी नाक में दम कर देंगे। भारत में उनकी नींद हराम हो जाएगी। यहीं से स्वदेशी-युग का आरंभ हुआ। यहीं से देश के वीर युवकों में यह बात उत्पन्न हुई कि देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना मानव का गौरव है।

विप्लवी के रूप में

भीगे काठ में अग्नि पैदा करना बड़े धैर्य का काम है। एक बार कुछ चिनगारियाँ प्रकट हो जाएँ तो उसे सुलगते देर नहीं लगती। उन दिनों भारत का जीवन देखकर ऐसा लगता था कि किसी में

आग नहीं है। किसी प्रकार जनता रोज़ी कमाती, पेट पालती थी, पेट ना भरने पर भी मुख नहीं खोलती थी। चुपचाप छाती पर पत्थर रखकर सब कुछ सहती चली जाती थी।

भारत को अंग्रेज़ किस प्रकार चूस रहे थे इसका दादा भाई नौरोजी ने बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है–"मुहम्मद गज़नी ने 18 बार हिन्दुस्तान को लूटा। उसने जो चोट पहुँचाई वह 18 हमलों के बाद कम हो गई पर विदेशी शासन के घाव का खून तो बन्द ही नहीं होता।"

श्री अरविन्द ने ही सबसे पहले कांग्रेस की 'भिक्षां देहि' नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी और 'युद्ध देहि' का शंख फूंका था। उनकी योजना का प्रथम चरण क्रांतिकारी आन्दोलन था। नाम था 'भवानी मन्दिर'। इस योजना के द्वारा उन्होंने देश से कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का, जो आग की ज्वाला सर्वत्र फैला दें, आह्वान किया।

श्री अरविन्द ने अपने खर्चे से बम बनाना सीखने के लिए एक आदमी को विलायत भेजा था। वे शुरु से क्रांतिकारी थे और जीवन-भर क्रांतिकारी रहे। वे चाहते थे चौकोर क्रांति।

श्री अरविन्द ने अपनी योजना का 'भवानी मंदिर' जैसा विचित्र नाम क्यों रखा? इसलिए कि उस ज़माने में सरकार के विरुद्ध खुले आम कुछ करना आसान नहीं था। श्री अरविन्द के नाना राजनारायण बोस को भी अपनी योजना का नाम 'हिन्दू मेला' रखना पड़ा था।

भारत के बाज़ारों में विलायती चीज़ों की भरमार देखकर लोगों में स्वदेशी के भाव जगाने की बात सबसे पहले राजनारायण बाबू के मन में ही आई थी।

छुई सुतो पर्यन्त आसे तुंग हते

दीयसलाई काठि ताऊ आसे पोते

प्रदीप टी ज्वालिते खेते, सुते, जेते

किछुतेई लोक नाय स्वाधीन।

अर्थ – सुई और दियासलाई तक विलायती जहाज़ से आती हैं। खाने-पीने, सोने किसी बात में भी लोग स्वतंत्र नहीं हैं।

15 अगस्त, 2019

युवक रवीन्द्रनाथ इस मेले में जाया करते थे। 18 वर्ष की उम्र में उन्होंने उस मेले में एक कविता का पाठ किया था। 'गाओभारत की जय' जैसे राष्ट्रीय गान का यहीं से सूत्रपात हुआ।

श्री अरविन्द पहले-पहल 1902 में मिदनापुर गए थे और वहाँ हेमचन्द्रदास से मिले थे। यहीं उन्होंने निश्चय किया कि क्रांतिकारी कार्य के लिए छः केन्द्र खोले जाएँ। राइफल चलाने का अभ्यास भी उन्होंने इसी समय किया था।

दूसरी बार जब श्री अरविन्द मिदनापुर गए तो हेमचन्द्र के एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में तलवार देकर क्रांतिकारी दल में दीक्षित किया।

अपनी 'अग्नि-युग' नामक रचना में वारीन लिखते हैं, "श्री अरविन्द ने ही मुझे खुली तलवार और गीता हाथ में देकर इस आंदोलन में सम्मिलित किया था।" इस प्रकार जो अग्नि 1902 से सुलग रही थी, वह बंग-भंग होते ही दप् से जल उठी।

स्वदेशी के उस युग में लोगों में कैसा जोश भर गया था, उसके कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं : **'युगांतर' के सम्पादक को जब लम्बी सज़ा हुई तो उसकी बूढ़ी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और बंगाल की 500 स्त्रियाँ उन्हें बधाई देने आयीं।**

18 वर्ष के खुदीराम को जब फाँसी की सज़ा हुई तो उसकी तस्वीरें घर-घर में दिखाई देने लगीं। देशद्रोही नरेन गुसाईं की हत्या करने वाले कन्हाई लाल दत्त को जब फाँसी की सज़ा हुई तब उसकी चिता-भस्म को बंगाल की जनता ने मस्तक पर चन्दन की तरह लगाया।

इससे पता चलता है कि देश के मुर्दा युवकों में नई जान फूँकने की दिशा में श्री अरविन्द की देन क्या है।

स्वदेशी-युग का नारा

क्या तुम्हें पता है कि नारे के रूप में 'वंदे मातरम्' की शुरुआत कैसे हुई? इसके पीछे त्याग और बलिदान की एक कहानी छिपी है।

सूरत कांग्रेस तक कुछ लोग 'शिवाजी की जय' तो कुछ 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते थे। बरिशाल के नेता अश्विनीकुमार थे। वहाँ उनका इतना प्रभाव था कि उनके हुक्म के बिना एक टुकड़ा विलायती कपड़ा या एक चम्मच विलायती नमक भी प्रवेश नहीं पा सकता था। 1906 में यहाँ प्रांतीय सम्मेलन हुआ था, जिसमें श्री अरविन्द भी शामिल हुए थे।

जब बंगाल के नेतागण स्टीमर से यहाँ पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि पुलिस का सख्त पहरा है, घाट पर एक भी कुली नहीं। जब पुलिस ने देखा कि बड़े घर के युवक कुलियों की तरह कंधों पर नेताओं का सामान लादकर ले जा रहे हैं, तो उनकी नानी मर गईं। मजिस्ट्रेट ने हुक्म जारी किया – "राजपथ पर कोई 'वंदे मातरम्' का नारा नहीं लगा सकता।" यह सुनकर सभी का खून खौलने लगा। "वंदे मातरम्," कहना अपराध है! माँ को वंदना करना अपराध है! माँ को वंदना करना अपराध है! नहीं मानते हम इसे!" 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते हुए एक दल बाहर निकला। लाठी और संगीनें लिए गुरखा पुलिस सामने आकर खड़ी हो गई। किन्तु वह नारों को बंद नहीं कर सकी।

एक स्वयंसेवक से मि0 कैम्प ने कहा – "इस बैज को निकालकर फेंक दो।" उस पर 'वंदे मातरम्' लिखा था। बालक चिल्ला उठा, 'वंदे मातरम्' पीछे खड़ी जनता भी चिल्ला उठी, 'वंदे मातरम्'!

"मारो!" कैम्पस ने हुक्म दिया।

पुलिस निहत्थे स्वयंसेवकों पर टूट पड़ी। लाठियों की मार से लोग गिरने लगे। पर भागा कोई भी नहीं, जितनी लाठियाँ पड़तीं, उतना ही लोग चिल्ला उठते - 'वंदे मातरम्!'

पिता के सिर पर लाठी पड़ते देख एक बालक ने लाठी की मार अपने ऊपर ले ली। था तो वह बालक, पर जितनी मार उस पर पड़ती उतनी ही बार वह 'वंदे मातरम्' का नारा लगता। मारते और घसीटते हुए पुलिस ने उसे ले जाकर एक तालाब में फेंक दिया।

जब उसके पिता खोजते-खोजते तालाब के पास पहुँचे, तब उसने कहा, "पिताजी, मैंने अन्त तक 'वंदे मातरम्', का उच्चारण करना बन्द नहीं किया।" उसे छाती से लगाते हुए पिता ने उत्तर दिया – "तुम्हारे जैसे पुत्र पाकर मैं धन्य हुआ।"

आगे चलकर बलिदानों का जो तांता लगा उसका श्रीगणेश यहीं हुआ। शासकों की जनता के साथ यह पहली मुठभेड़ थी। जहाँ लाठी की वर्षा हुई थी, वहाँ स्मारक बनाने के लिए दूसरे दिन एक सभा बुलाई गई। एक महिला ने उठकर कहा, "जब तक 'वंदे मातरम्' से प्रतिबन्ध नहीं हटाया जाता तब तक मैं चूड़ियाँ नहीं पहनूँगी" और उसने चूड़ियाँ उतार कर दे दीं। देखत-देखते जनता के मन से राजद्रोह का भय छूमंतर हो गया।

15 अगस्त, 2019

बरिशाल से श्री अरविन्द विपिनचन्द्र पाल के साथ पूर्वी बंगाल का दौरा करने निकले। ऐनी बेसेंट ने श्री अरविन्द को भारत का 'मेज़िनी' कहा था। पर तात्कालीन वायसराय लार्ड मिण्टो की नज़र में श्री अरविन्द सबसे खतरनाक व्यक्ति थे। उन्होंने भारत सचिव को यह बात लिखी थी, जो विलायत में रहते थे।

एक समय था जब सारा भारत बंगालियों को डरपोक और दब्बू कहा करता था। मेकॉले ने तो यहाँ तक लिख मारा था कि बंगालियों को अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करना भेड़-बकरियों का खूंखार भेड़ियों से, मानव का दानव से वैर मोल लेना है। परन्तु कुछ ही वर्षों में उसी बंगाल से मृत्यु से खेलने वाले ऐसे-ऐसे युवकों का जन्म हुआ कि अंग्रेज़ उनके नाम से काँपने लगे। उनकी वीरता, देश के लिए मिट जाने की क्षमता अपने हाथों फाँसी का फंदा डाल लेने का साहस देखकर जनता उनकी राख का तावीज़ बनाकर पहनने लगी।

जेल - जीवन

श्री अरविन्द पर तीन बार मुकदमा चला और तीनों बार वे छोड़ दिए गए। नाम के वे कभी भूखे नहीं रहे। वे सदा पीछे रह कर काम करना चाहते थे परन्तु यह तो सरकार थी जिसने उन्हें गिरफ्तार कर जनता के सामने लाकर खड़ा कर दिया है। मद्रास के 'स्टैण्डर्ड' ने लिखा था, "चरित्र और योग्यता की दृष्टि से इतना महान् व्यक्ति आज तक देखने में नहीं आया।"

इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सारे देश में सनसनी फैल गई। बंगाल का जो ज़िला जज था, उसका नाम था किंग्सफोर्ड। वह बड़ा अत्याचारी था। उसने 'संध्या' के सम्पादक को जेल में सड़ाकर मार डाला था। एक 15 वर्ष के युवक को अपने सामने 15 बेंत लगवाए थे। उसका अपराध केवल इतना था कि श्री अरविन्द की गिरफ्तारी पर जो जुलूस निकला था, उसपर लाठी बरसाने वाले सार्जेण्ट का उसने विरोध किया।

किंग्सफोर्ड को मारने का प्रथम प्रयास विफल गया। फिर उसके नाम एक पारसल भेजा गया। पारसल देखने में पुस्तक जैसा था। पर उसमें एक शक्तिशाली बम था। आशा थी कि पारसल की रस्सी काटते ही बम फट पड़ेगा। पर किंग्सफोर्ड ने उसे छुआ तक नहीं। पुलिस ने पारसल को पानी में खोला, जिससे बम बेकार हो गया। कुछ दिन बाद उसकी बदली मुज़फ्फरपुर हो गई। उसे वहीं मारने के लिए दो युवक चुने गए। उनमें से एक का नाम था खुदीराम बोस, दूसरे का प्रफुल्ल चाकी।

खुदीराम बोस उसी मिदनापुर जिले का था जहाँ के तीन ज़िलाधीशों को मौत के घाट उतारा गया था। खुदीराम बोस जब जेल में था, तो उसे चरित्र भ्रष्ट करने के कई उपाय किए गए। पर वह नहीं डिगा। वह अपने दल के प्रति सच्चा रहा। अस्तु, जिस गाड़ी पर इस युवकों ने बम फेंका वह किंग्सफोर्ड की नहीं थी। उसमें दो मेमें बैठी थीं। तुरन्त उनकी मृत्यु हो गई। सरकार खार खाए तो बैठी थी ही। इस बम कांड से उसे खुलकर दमन करने का मौका मिल गया।

कलकत्ते के मानिकतल्ला मुहल्ले में श्री अरविन्द की ढाई एकड़ ज़मीन थी। उसमें तीन कोठरी वाला एक मकान था। बारीनकुमार घोष कुछ युवकों के साथ वहाँ बम बनाया करते थे। इसका सुराग सरकार को लग गया। वहाँ जितने व्यक्ति थे उन सबको पकड़ लिया गया।

5 मई, 1908 को जब श्री अरविन्द सोए हुए थे, पुलिस रिवाल्वर लेकर उनके घर घुस आई और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके साथ उस समय 34 व्यक्ति थे। श्री अरविन्द का असली जीवन यहीं से आरम्भ होता है।

जब श्री अरविन्द जेल गए तो उनका हृदय पुकार उठा – “भगवान! कहाँ है तुम्हारी रक्षा का हाथ? यह क्या हुआ?” वे बेकार रहना कभी पंसद नहीं करते थे। जेल की बेकारी उन्हें खलने लगी। उस समय वे यह नहीं समझ सके कि भगवान उनके साथ खेल रहे हैं, उन्हें शिक्षा दे रहे हैं। जिस कार्य के लिए उन्हें 40 वर्ष एक कोठरी में बन्द रहना पड़ेगा, उसके लिए शान्ति प्रदान कर रहे हैं! थोड़े दिन में उनके मन की यह दुर्बलता जाती रही!

इसके बाद श्री अरविन्द को बिना प्रयास किए भगवान के दर्शन हुए। बात यह हुई कि जिस कमरे में वे रखे गए थे, वह नौ फुट लम्बा और पाँच फुट चौड़ा था। मई का महीना था। थोड़ी देर में वह कमरा भट्ठी के समान हो जाता। भीषण गर्मी और बिछाने के लिए दो कम्बल तथा पानी के लिए टीन की एक बाल्टी!

चार-पाँच दिन तक उनके पास पहनने के लिए वही कपड़े थे जिन्हें पहनकर वे अपने घर से आए थे। नहाने के लिए एक वार्डन उनके लिए एक छोटी-सी लंगोटी ढूँढ़ लाया था। जब तक धोती सूखती, वही लंगोटी पहनकर वे बैठे रहते। इससे पता चलता है कि उन दिनों अरविन्द जैसे पुरुषों के साथ भी जेल में कितनी कठोरता बरती जाती थी।

कुछ दिनों बाद ही उन्हें सुबह-शाम अपनी कोठरी के बाहर टहलने की आज्ञा मिल गयी। एक दिन टहलते हुए उन्होंने देखा, वे जेल की दीवार के अन्दर बंद नहीं हैं, उन्हें सब ओर से भगवान

घेरे हैं। उनकी कोठरी के सामने जो पेड़ था, उन्हें लगा कि वहाँ पेड़ नहीं हैं, श्रीकृष्ण खड़े हैं और उनपर छाया किए हैं। जेल के संतरी के बदले स्वयं नारायण संतरी बनकर पहरा दे रहे हैं। कम्बल पर लेटते ही उन्हें लगा – "मेरा सखा, मेरे प्रेमास्पद श्रीकृष्ण मुझे अपने बाहुओं में लिए हुए हैं। मैंने जेल के कैदियों, चोरों, हत्यारों की ओर देखा – सबमें वासुदेव दिखायी पड़े।"

छोटी अदालत में जब मामला शुरु हुआ, तो वे देखते हैं कि अदालत की कुर्सी पर मजिस्ट्रेट नहीं स्वयं वासुदेव बैठे हैं, सरकारी वकील के भीतर भी वही बैठे मुस्करा रहे हैं। श्री अरविन्द पर सबकी दृष्टि गड़ी थी। उन दिनों समाचारपत्र इसी मामले की पेशी आदि के समाचारों से भरे रहते थे। अपनी राय देते हुए स्वयं हाकिम ने कहा था, "इस मामले में अरविन्द घोष का नाम शामिल ना होता तो यह जाने कब का खतम हो गया होता। मुद्दई उन्हीं को सबसे अधिक दोषी ठहराने के लिए उत्सुक है।"

एक दिन ऐसा भी था जब योग में श्रीअरविन्द की आस्था नहीं थी। वह भारत को अंग्रेज़ों के खूनी पंजों से छुड़ाने के लिए शक्ति प्राप्त करना चाहते थे, पर भगवान् उन्हें दूसरी ओर बहा ले गए। वे स्वयं कहते हैं : "मेरा लालन-पालन विलायत में हुआ था। हिन्दू धर्म की बहुत-सी बातों को एक दिन मैं कल्पना-मात्र समझता था। यह समझता था कि इसमें बहुत कुछ भ्रम है, पर अब मैं हिन्दू धर्म के सत्य को अनुभव कर रहा हूँ।"

"जब मैं भगवान की ओर मुड़ा था, तब मेरे पास ना ज्ञान का बल था, ना भक्ति का। मेरा उनके ऊपर विश्वास भी नहीं था। मैंने कहा – हे भगवान! तुम जानते हो, मैं मुक्ति नहीं माँगता, मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं माँगता जिसे दूसरे लोग माँगा करते हैं, मैं तो केवल यह माँगता हूँ कि इस जाति को ऊपर उठाने की मुझे शक्ति दो कि उसके प्रति मैं अपना जीवन उत्सर्ग कर सकूँ। मैं नहीं जानता कि कौन-सा काम करूँ और कैसे करूँ।"

"उत्तर में भगवान् कहते हैं – मैं नहीं चाहता कि और-और लोग जिस प्रकार अपने देश के लिए काम करते हैं, वैसे ही तुम भी करो। मैंने तुम्हें दिखा दिया है कि हिन्दू धर्म का सत्य क्या है। मैं अपनी वाणी का प्रचार करने के लिये भारत को उठा रहा हूँ।" हिन्दू धर्म मनुष्य को विश्वास दिलाता है कि भगवान तुम्हारे हैं और तुम उन्हें पा सकते हो।

जेल में श्री अरविन्द का समय अधिकतर ध्यान में ही गुजरता। संध्या समय सब उन्हें घेरकर बैठते। लड़कों से वह लड़कों की तरह मिलते। उस समय उनकी रसिकता के स्रोत में सभी बह

जाते। कभी-कभी श्री अरविन्द बड़ी मीठी चुटकी लिया करते, "हमारी पुलिस का क्या कहना। जब कहीं डकैती पड़ती हो तब तो पुलिस कहीं नज़र नहीं आती, जब डकैत नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं, तब यह दल-बल सहित आ जुटती है और चट बोल उठती है – यह स्वयं सेवकों का काम है।"

जब पुलिस गोली से ही बात करती हो तब इस प्रकार से उसकी खिल्ली उड़ाना किसी ऐसे हृदय का ही काम है जो दबना नहीं जानता। जो दिल अपने देश के लिए बिक चुका है उसका पुलिस भला क्या कर सकती है? श्री अरविन्द कुछ कम विनोदप्रिय नहीं थे। कलकत्ता के एक पत्र ने उन्हें सलाह दी थी कि वे अब विदेशी बहिष्कार पर वक्तृता देना छोड़कर धर्म और साहित्य की सेवा में अपना मन लगाएँ तो अच्छा हो।

उत्तर में उन्होंने कहा, "आहा! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। स्वराज्य और स्वदेशी पर लिखते रहना मेरी साहित्यिक सेवा है और इन्हीं पर भाषण देना मेरे धर्म का अंग है।" तब तक चित्तरंजन दास 'देश बंधु' नहीं हो पाये थे। इसी मुकदमे से उनकी ख्याति शुरु हुई। आठ दिन तक उनकी बहस चलती रही। अन्त में उन्होंने कहा : "न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद, उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी माना जाएगा।" तब कौन जानता था कि वाणी सत्य होकर रहेगी।

पांडिचेरी की तपोभूमि

पांडिचेरी श्री अरविन्द की तपस्या की गुह्य स्थली है। यह उनकी कर्म और साधना-भूमि है। जब वे यहाँ आये तब यह मृतप्राय स्थान था। आज यह ऋषि भूमि विश्व का तीर्थस्थान है।

भारत सरकार जैसे भी हो श्री अरविन्द को पांडिचेरी से बाहर ले जाने के लिए बेचैन थी। उसे भय था कि ना जाने कब वे फिर देश में तहलका मचा दें। बंगाल में पुलिस का ऐसा आतंक छाया था कि श्री अरविन्द की लिखी पुस्तकें भी लोग भयरहित हो कर खरीद नहीं पाते थे। वे उनका नाम लेते भी डरते थे।

श्री अरविन्द से दो बार कांग्रेस का सभापति बनने के लिए आग्रह किया गया। डा0 मुंजे, राजर्षि टण्डन, लाला लाजपतराय सरीखे नेतागण पांडिचेरी तक आए पर श्री अरविन्द राज़ी नहीं हुए। देशबन्धु दास साधना-क्षेत्र में कूदना चाहते थे पर श्री अरविन्द ने उन्हें भारत के राजनीतिक क्षेत्र से अलग होने को मना किया।

15 अगस्त, 2019

1914 में माताजी का यहाँ पहली बार आगमन हुआ। उन्हीं की प्रेरणा से आर्य पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ! 'वंदे मातरम्' के दिनों जिस लेखनी से अग्नि के स्फुलिंग निकलकर देश-भर में छाते थे, उससे अब अमृत का झरना झरने लगा।

श्री अरविन्द ने दूसरों से बहुत पहले 'एक संसार' की बात कही थी। 1910 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद जब देश उदासी का कफन ओढ़े पड़ा था, तब किसी ने कहा – "भारत के लिए कोई आशा नहीं रही। युद्ध के उपरान्त अंग्रेज़ों का दमन-चक्र इतने ज़ोर से चलेगा कि जनता वर्षों तक स्वतन्त्रता का नाम नहीं ले सकेगी।"

यह बात जब श्री अरविन्द से कही गयी तो वे बोले – "मुझे देश की स्वतन्त्रता की चिंता नहीं है। चिंता इस बात की है कि देश को स्वतंत्रता मिलने पर वह उसका उपयोग कैसे करेगा?"

जब द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा, तब पहले-पहल उन्होंने उसके साथ उन्होंने कोई सम्बन्ध नहीं रखा, पर जब देखा कि हिटलर की विजय से पैशाचिक शक्ति सौ गुना बढ़ जाएगी; तब उन्होंने हस्तक्षेप करना शुरु किया। उन दिनों वे युद्ध के घंटे-घंटे का समाचार रखते थे और पल-प्रतिपल देखते और तोलते थे कि जो सूक्ष्म जगत् में हो रहा है उसका यहाँ क्या प्रभाव पड़ता है। 1945 में जब हिटलर ने आत्म-हत्या कर ली तब दुनिया ने जाना कि कैसी थी श्री अरविन्द की ऋषि-दृष्टि।

श्री अरविन्द की खोज

लंदन टाइम्स ने एक बार लिखा था – "श्री अरविन्द केवल बुद्धि-विलासी दार्शनिक नहीं है। वे एक ऐसे संसार का निर्माण करने में लगे हैं जो उनके विचार में पैदा होने के लिए संघर्ष कर रहा है।" मानव-जीवन में जो ज़हर फैला है उसका रूपांतर कैसे हो यही था श्री अरविन्द के जीवन का महाप्रश्न। श्री अरविन्द का दर्शन मानव के आगे वह मशाल जलाता है जिससे उसकी आँखों के आगे एक नूतन भविष्य का द्वार खुले, एक नवीन आशा की उसे झलक मिले।

विज्ञान ने आज मानव को कहाँ लाकर पटका है! हमारा जीवन कितना रहस्यमय है! उसमें कितने प्रकार की पहेलियाँ हैं! इसका सही हल क्या है! इन बातों की खोज श्री अरविन्द ने कितने ऊपर उठकर कितने गहरे पैठकर की है! यह बहुत कम लोग जानते हैं। संसार कैसा है! उसकी अपेक्षा संसार कैसा होना चाहिए इस पर श्री अरविन्द की दृष्टि थी।

बुद्धि के प्रकाश में जो कुछ करना सम्भव था, वह हो चुका। अब एक कदम आगे बढ़ने की बारी है। मानस-लोक के परे जो लोक है उसको श्री अरविन्द ने अतिमानस नाम दिया है। श्री अरविन्द का कहना है कि अतिमानस को पृथ्वी पर ला बसाना होगा। अपने महापुरुषों को दुनिया ने कब पहचाना है! जो कहा था उसे कर दिखाने के लिए श्री अरविन्द ने जीवन की बाज़ी लगा दी। 5 दिसम्बर, 1950 को श्री अरविन्द का तिरोधान हुआ। उनकी समाधि के प्रकाश से आश्रम का पत्ता-पत्ता प्रतिबिंबित है।

महर्षि श्री अरविन्द

जिस युग में हम रह रहे हैं वह आणविक युग है। श्री अरविन्द इसी युग के ऋषि हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि अमृत पीते थे और अमृत बरसाते थे। किसी दर्शनार्थी ने एक बार कहा था – "यह एक ऐसा पुरुष है जो दृष्टि-मात्र से मनुष्य के हृदय को जीत लेता है।" माताजी कौन हैं, इस संबंध में स्वयं उन्होंने कहा था – "जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ, अपनी इच्छा-स्वभाव से भारतीय हूँ। मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य श्री अरविन्द की महाशिक्षा को मूर्त रूप देना है।"

लाखों वर्ष के बाद ऐसे पुरुष का जन्म हुआ जिसने हमें सिखाया कि अपनी मुक्ति के लिए नहीं वरन् घृणा-द्वेष के जगत् में भगवान् का राज्य स्थापित करने के लिए साधना करनी होगी। श्री अरविन्द आश्रम में जाति, वर्ण का स्थान नहीं है। ना यहाँ स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। आश्रम देखकर सन् 1960 में वेदमूर्ति पं0 सातवलेकर जी ने कहा – "जिस चीज़ के लिए मैं पचास साठ वर्षों से प्रार्थना करता आया हूँ। आज उसी को यहाँ मूर्त रूप में देख रहा हूँ। वैदिक युग के बाद इस धरती पर शायद इस प्रकार का प्रयास यह पहली बार हो रहा है। यहाँ की साधना पूर्णरूप से वैदिक साधना है – जीता-जागता वैदिक युग यहाँ जन्म ले रहा है।"

इस समय श्री अरविन्द के नाम पर आधारित अरविन्द, नामक एक नगरी बसाने का प्रयास चल रहा है। यह एक ऐसी नगरी होगी जहाँ छीना-झपटी घृणा-द्वेष के लिए स्थान नहीं होगा। द्रव्य का, विज्ञान का, मशीन का उपयोग भगवान् के लिए होगा।

15 अगस्त, 2019

कारावास की कहानी (भाग-1)

श्री अरविन्द

(इस अनुवाद में जहाँ तक हो सका हमने श्रीअरविन्द की मूल बंगला पुस्तक के साथ-साथ चलने की कोशिश की है। -अनु.)

मैं पहली मई सन् 1908 ई., शुक्रवार के दिन 'वन्देमातरम्' के दफ्तर में बैठा था, तभी श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने मुजफ्फरपुर का एक टेलीग्राम मेरे हाथ में थमाया। पढ़ कर मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर में बम फटा है जिससे दो मेमों की मृत्यु हो गयी है। उसी दिन के 'एम्पायर' अंग्रेजी अख़बार में यह भी पढ़ा कि पुलिस कमिश्नर ने कहा है – हम जानते हैं, इस हत्याकाण्ड में किन-किन का हाथ है और वे शीघ्र ही गिरफ्तार किये जायेंगे। तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं ही था इस सन्देह का मुख्य निशाना- पुलिस के विचार में प्रधान हत्यारा, राष्ट्र-विप्लव-प्रयासी युवक दल का मन्त्र दाता और गुप्त नेता। नहीं जानता था कि आज का दिन ही होगा मेरे जीवन के एक अंक का अन्तिम पृष्ठ, मेरे सम्मुख था एक वर्ष का कारावास, इस समय से ही मनुष्य-जीवन के साथ जितने बन्धन हैं, सब छिन्न-भिन्न होंगे, एक वर्ष के लिए मानव समाज से अलग पशुओं की तरह पिंजरे में बन्द रहना पड़ेगा। फिर जब कर्मक्षेत्र में वापस आऊँगा तब वह पुराना परिचित अरविन्द घोष प्रवेश नहीं करेगा वरन्, एक नया मनुष्य, नया चरित्र, नयी बुद्धि, नया प्राण, नया मन ले और नये कार्य का भार उठा अलीपुर स्थित आश्रम से बाहर होगा। कहा है एक वर्ष का कारावास पर कहना उचित था एक वर्ष का वनवास, एक वर्ष का आश्रमवास। बहुत दिनों से हृदयस्थ नारायण के साक्षात् दर्शन करने की प्रबल चेष्टा में लगा था; उत्कट आशा संजोये हुए था कि जगद्धाता पुरुषोत्तम को बन्धुभाव में, प्रभुभाव में प्राप्त करूँ। किन्तु संसार की सहस्त्रों वासनाओं के आकर्षण, नाना कर्मों में आसक्ति और अज्ञान के प्रगाढ़ अन्धकार के कारण कर ना पाया। अन्त में परमदयालु सर्वमंगलमय श्रीहरि ने इन सब शत्रुओं को एक ही वार में समाप्त कर उसके लिए सुविधा कर दी, योगाश्रम दिखलाया और स्वयं गुरु रूप में, सखा रूप में उस क्षुद्र साधन कुटीर में अवस्थान किया। वह आश्रम था अंग्रेजों का कारागार। मैं अपने जीवन में बराबर ही यह आश्चर्यमय असंगति देखता आ रहा हूँ कि मेरे हितैषी बन्धुगण मेरा जितना भी उपकार क्यों ना करें, अनिष्टकारी – शत्रु किसे कहूँ, मेरा अब कोई शत्रु नहीं – शत्रुओं ने ही अधिक उपकार किया है। उन्होंने अनिष्ट करना चाहा पर इष्ट ही हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेंट की कोप-दृष्टि का एकमात्र फल – मुझे भगवान् मिले। कारावास के आन्तरिक जीवन का इतिहास लिखना इस लेख

का उद्देश्य नहीं है, कुछ एक घटनाओं को वर्णित करने की ही इच्छा है, किन्तु कारावास के मुख्य भाव का उल्लेख लेख के आरम्भ में ही करना उचित समझा, नहीं तो पाठक समझ बैठेंगे कि कष्ट ही है कारावास का सार। कष्ट नहीं था ऐसी बात नहीं, किन्तु अधिकांश समय आनन्द से ही बीता।

शुक्रवार की रात को मैं निश्चिन्तता से सो रहा था। सवेरे करीब पाँच बजे मेरी बहिन एकदम डरी-सी मेरे कमरे में आयी और मेरा नाम ले मुझे पुकारने लगी। मैं जाग पड़ा। क्षण-भर में मेरा छोटा-सा कमरा सशस्त्र पुलिस से भर गया; उनमें थे सुपरिटेंडेंट क्रेगन, 24 परगना के क्लार्क साहब, हमारे सुपरिचित श्रीमान् विनोदकुमार गुप्त की आनन्दमयी और लावण्यमयी मूर्ति और कई एक इंस्पेक्टर, लाल पगड़ियाँ, जासूस और खानातलाशी के साक्षी। हाथों में पिस्तौल लिये वे वीर-दर्प से ऐसे दौड़े आये मानों तोपों और बन्दूकों से सुरक्षित किले पर दखल करने आये हों। आँखों से तो नहीं देखा पर सुना कि एक श्वेतांग वीर पुरुष ने मेरी बहिन की छाती पर पिस्तौल तानी थी। बिछौने पर बैठा हुआ हूँ, अर्द्धनिद्रित अवस्था, क्रेगन साहब ने पूछा "अरविन्द घोष कौन हैं?" मैंने कहा, "हाँ, मैं ही हूँ अरविन्द घोष।" तुरन्त उन्होंने एक सिपाही को मुझे गिरफ्तार करने को कहा, उसके बाद क्रेगन साहब की किसी एक अश्लील बात पर क्षण-भर के लिए आपस में कहा – सुनी हो गयी। मैंने खानातलाशी का वारंट माँगा, पढ़कर उस पर सही की। वारंट में बम की बात देखकर समझ गया कि इस पुलिस सेना का आविर्भाव मुजफ्फरपुर में हुए खून से सम्बन्धित है। परन्तु यह समझ में नहीं आया कि बम या कोई विस्फोटक पदार्थ मेरे मकान में पाये जाने के पहले ही और बिना 'बॉडी-वारंट' के मुझे क्यों गिरफ्तार किया गया। तो भी इस बारे में व्यर्थ कोई आपत्ति नहीं उठायी। इसके बाद ही क्रेगन साहब के हुकुम से मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बाँध दी गयी। एक हिन्दुस्तानी सिपाही वह रस्सी पकड़े मेरे पीछे खड़ा रहा। ठीक उसी समय श्रीयुत अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य और श्रीयुत शैलेन्द्र वसु को पुलिस ऊपर ले आयी, उनके भी हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी थी। करीब आधे घण्टे बाद, ना जाने किसके कहने से उन्होंने हथकड़ी और रस्सी खोल दी। क्रेगन की बातों में ऐसा लगता था मानों वह किसी ख़ूंखार पशु की माँद में घुस आये हों, मानों हम थे अशिक्षित, हिंस्र और स्वभाव से कानून-भंजक, हमारे साथ भद्र व्यवहार या भद्रता से बात करना बेकार है। परन्तु झगड़े के बाद साहब जरा नरम पड़ गये थे। विनोद बाबू ने मेरे बारे में उन्हें कुछ समझाने की चेष्टा की। उसके बाद क्रेगन ने मुझसे पूछा, "आपने शायद बी. ए. पास किया है? ऐसे मकान में, ऐसे सज्जाविहीन कमरे में जमीन पर सोये हुए थे, इस तरह रहना आप जैसे शिक्षित व्यक्ति के लिए क्या लज्जाजनक नहीं?" मैंने कहा, "मैं दरिद्र हूँ, दरिद्र की तरह ही रहता हूँ।" साहब ने तुरन्त गरजकर कहा, "तो क्या आपने

धनी बनने के लिए ही यह सब षड्यन्त्र रचा है?" देश-हितैषिता, स्वार्थत्याग या दारिद्र्य-व्रत का महात्म्य इस स्थूल बुद्धि अंग्रेज को समझाना असाध्य जान मैंने वैसी चेष्टा नहीं की।

इस बीच खानातलाशी चलती रही। यह सेवेरे साढ़े पाँच बजे आरम्भ हुई और प्रायः साढ़े ग्यारह बजे समाप्त हुई। बक्से के बाहर, भीतर जितना कापियाँ, चिट्ठियाँ, कागज, कागज के टुकड़े, कविताएँ, नाटक, पद्य, प्रबन्ध, अनुवाद – जो कुछ भी मिला, कुछ भी इन सर्वग्रासी खानातलाशियों के ग्रास से नहीं बच पाया। खानातलाशी के गवाहों में रक्षित महाशय क्षुण्णमना-से थे। बाद में बड़े दुःख के साथ उन्होंने मुझे बताया कि पुलिस अचानक बिना कुछ कहे-सुने उन्हें यहाँ घसीट लायी कि उन्हें योगदान करना होगा। रक्षित बाबू ने बड़े ही करुण भाव से हरण-काण्ड की कथा सुनायी। दूसरे साक्षी समरनाथ का भाव कुछ और ही था। उन्होंने बड़ी स्फूर्ति से एक सच्चे राजभक्त की तरह यह खानातलाशी का कार्य सुसम्पन्न किया मानों इसी के लिए जन्मे हों। खानातलाशी के समय और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। पर याद आती है गत्ते के एक छोटे डिब्बे में दक्षिणेश्वर की जो मिट्टी रखी थी क्लार्क साहब उसे बड़े सन्दिग्ध चित्त से बहुत देर तक परखते रहे मानों उनके मन में शंका थी कि हो ना हो यह कोई नया, भयंकर, शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ है। एक तरह से क्लार्क साहब का सन्देह निराधार भी नहीं कहा जा सकता। अन्त में यह मान लिया गया कि यह मिट्टी के सिवा और कुछ नहीं, और इसे रासायनिक विश्लेषणकारियों के पास भेजना अनावश्यक है। खानातलाशी के समय बक्सा खोलने के सिवा मैंने और कुछ नहीं किया। मुझे कोई भी कागज या चिट्ठी दिखलायी या पढ़कर सुनायी नहीं गयी, केवल अलकधारी की एक चिट्ठी क्रेगन साहब ने अपने मनोरंजन के लिए उच्च स्वर में पढ़ी। बन्धुवर विनोद गुप्त अपने स्वाभाविक ललित पदविन्यास से घर को कंपाते हुए चक्कर काट रहे थे, शेल्फ में से या और कहीं से कागज या चिट्ठी निकालते, बीच-बीच में, "बहुत जरूरी बहुत जरूरी" कह उसे क्रेगन साहब को थमाते जाते। मैं जान नहीं पाया कि ये आवश्यक कागज क्या थे? इस बारे में कोई कौतूहल भी नहीं था क्योंकि मुझे पता था कि मेरे घर में विस्फोटक पदार्थ बनाने की प्रणाली या षड्यन्त्र में हाथ होने का कोई भी सबूत मिलना असम्भव है।

मेरे कमरे का कोना-कोना छान मारने के बाद पुलिस हमें पास वाले कमरे में ले गयी। क्रेगन ने मेरी छोटी मासी का बक्सा खोला, एक-दो बार चिट्ठियों पर नजर भर डालकर "औरतों की चिट्ठियों की जरूरत नहीं" कह उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद एकतल्ले पर पुलिस महात्माओं का आविर्भाव हुआ। वहाँ क्रेगन का चाय-पानी हुआ। मैंने एक प्याला कोको और रोटी ली। ऐसे सुअवसर पर साहब अपने राजनैतिक मतों को युक्ति तर्क द्वारा प्रतिपादित करने की चेष्टा करने

लगे। मैं अविचलित चित्त से यह मानसिक यन्त्रणा सहता रहा। तो भी जिज्ञासा होती है कि शरीर पर अत्याचार करना तो पुलिस की सनातन प्रथा रही है, मन पर भी ऐसा अमानुषिक अत्याचार करना अलिखित कानून की चौहद्दी में पड़ता है क्या? आशा है हमारे परम मान्य देशहितैषी श्रीयुत योगेन्द्रचन्द्र घोष इस बारे में व्यवस्थापक सभा में प्रश्न उठायेंगे।

नीचे के कमरों और 'नवशक्ति कार्यालय' की खानातलाशी के बाद 'नवशक्ति' के एक लौह सन्दूक को खोलने के लिए पुलिस फिर से दोतल्ले पर गयी। आधे घण्टे तक व्यर्थ सिर फोड़ने के बाद उसे थाने ले जाना ही निश्चय हुआ। इस बार एक पुलिस साहब ने एक साईकिल ढूँढ़ निकाला, उस पर लगे रेलवे लेबल पर 'कुष्टिया' लिखा था। तुरन्त ही कुष्टिया में साहब पर गोली चलाने वाले का वाहन मान इसे एक गुरुतर प्रमाण समझ सानन्द साथ ले गये।

प्रायः साढ़े ग्यारह बजे हम घर से रवाना हुए। फाटक के बाहर मेरे मौसाजी एवं श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु गाड़ी में उपस्थिति थे। मौसाजी ने मुझसे पूछा, "किस अपराध में गिरफ्तार हुए हो?" मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता, इन्होंने घर में घुसते ही गिरफ्तार कर लिया, हाथों में हथकड़ी पहनायी, 'बॉडी वारंट' तक नहीं दिखाया।" मौसाजी के पूछने पर कि हथकड़ी पहनाये जाने का क्या कारण है, विनोद बाबू बोले, "महाशय, मेरा दोष नहीं, अरविन्द बाबू से पूछिये, मैंने ही साहब से कहकर हथकड़ी खुलवायी है।" भूपेन बाबू के पूछने पर कि क्या अपराध है, गुप्त महाशय ने नरहत्या की धारा दिखायी। यह सुन भूपेन बाबू स्तम्भित रह गये और कोई भी बात नहीं की। बाद में सुना, मेरे सॉलिसिटर श्रीयुत हरेन्द्रनाथ दत्त ने ग्रे स्ट्रीट में खानातलाशी के समय मेरी ओर से उपस्थित रहने की इच्छा प्रकट की थी पर पुलिस ने उन्हें लौटा दिया।

हम तीनों को थाने ले जाने का भार था विनोद बाबू पर। थाने में उन्होंने हमारे साथ विशेष भद्र व्यवहार किया। वहीं नहा-धोकर, खा-पीकर लालबाजार के लिए चले। कुछ घण्टे लालबाजार में बिठा रखने के बाद रायड स्ट्रीट में ले गये। शाम तक उसी शुभ स्थान पर अपना समय काटा। वहीं जासूस-पुंगव मौलवी शम्स-उल् आलम के साथ पहला आलाप व प्रीति स्थापित हुई। मौलवी साहब का तब तक ना इतना प्रभाव था और ना उनमें इतना उत्साह और उद्यम था। बम-केस के प्रधान अन्वेषक या नॉर्टन साहब के Prompter (प्रेरक) या जीवन्त स्मरण-शक्ति के रूप में तब तक चमके रामसदय बाबू ही थे इस केस के प्रधान पण्डा। मौलवी साहब ने मुझे धर्म पर अतिशय सरस वार्ता सुनायी। उनके अनुसार हिन्दू-धर्म और इस्लाम धर्म का मूल-मन्त्र एक ही है, हिन्दुओं के ओंकार में तीन मात्राएँ हैं – अ उ म्, कुरान के पहले तीन अक्षर हैं – अ ल म,

भाषातत्त्व के नियम से ल के बदले उ व्यवहृत होता है अतएव हिन्दू और मुसलमान का मन्त्र एक ही है तथापि अपने धर्म का पार्थक्य अक्षुण्ण रखना होता है, मुसलमान के साथ खाना खाना हिन्दू के लिए निन्दनीय है। सत्यवादी होना भी धर्म का एक प्रधान अंग है। साहब लोग कहते हैं कि अरविन्द घोष हत्याकारी दल के नेता हैं, भारतवर्ष के लिए यह बड़े दुःख और लज्जा की बात है, फिर भी सत्यवादिता अपनाने से स्थित सम्भाली जा सकती है। मौलवी का दृढ़ विश्वास था कि विपिन पाल और अरविन्द घोष जैसे उच्च चरित्रवान् व्यक्तियों ने चाहे जो भी किया हो, उसे मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे। श्रीयुत पूर्णचन्द्र लाहिड़ी वहीं बैठे थे, उन्होंने इस पर सन्देह प्रकट किया किन्तु मौलवी साहब अपनी बात पर अड़े रहे। उनकी विद्याबुद्धि और उत्कट धर्मभाव देख मैं अतिशय चमत्कृत और हर्षित हुआ। ज्यादा बोलना धृष्टता होगी यह सोच मैंने नम्र भाव से उनका अमूल्य उपदेश सुना और उसे सयत्न हृदयांकित किया। धर्म के लिए इतने मतवाले होने पर भी मौलवी साहब ने जासूसी नहीं छोड़ी। एक बार कहने लगे, "अपने छोटे भाई को बम बनाने के लिए आपने जो बगीचा दे दिया सो बड़ी भूल की, यह बुद्धिमानी का काम नहीं हुआ।" उनकी बात का आशय समझ मैं मुस्कुराया; बोला, "महाशय, बगीचा जैसा मेरा वैसा मेरे भाई का, मैंने उसे दे दिया है या दिया भी तो बम तैयार करने के लिए दिया, यह खबर आपको कहाँ से मिली?" मौलवी साहब अप्रतिभ हो बोले, "मैं कह रहा था यदि आपने ऐसा किया हो तो।" यह महात्मा अपने जीवन-चरित्र का एक पन्ना खोल, मुझे दिखाते हुए बोले, "मेरे जीवन में जितनी नैतिक या आर्थिक उन्नति हुई है उसका मूल कारण है मेरे बाप का एक अतिशय मूल्यवान् उपदेश। वे हमेशा कहा करते थे, परोसी थाली कभी नहीं ठुकराना। यही महावाक्य है मेरे जीवन का मूलमन्त्र, इसे सदा याद रखने के कारण ही हुई मेरी यह उन्नति।" ऐसा कहते समय मौलवी साहब ने ऐसी तीव्र दृष्टि से मेरी ओर घूरा मानों मैं ही हूँ उनके सामने परोसी थाली। संध्या-समय स्वनामधन्य श्रीयुत रामसदय मुखोपाध्याय का आविर्भाव हुआ। उन्होंने मेरे प्रति अत्यन्त दया और सहानुभूति दिखायी, सभी को मेरे खाने और सोने का प्रबन्ध करने को कहा। अगले ही क्षण कुछ लोग आकर मुझे और शैलेन्द्र को मूसलाधार वर्षा में लालबाजार हवालात में ले गये। रामसदय के साथ बस यही एक बार ही मेरी बातचीत हुई समझ गया कि आदमी बुद्धिमान् और उद्यमी हैं किन्तु उनकी बातचीत, भावभंगिमा, स्वर, चलन, सब कुछ कृत्रिम और अस्वाभाविक है, हमेशा जैसे रंगमञ्च पर अभिनय कर रहे हों। ऐसे भी आदमी होते हैं जिनका शरीर, बात, क्रिया सब मानों अनृत के अवतार हों। कच्चे मन को बहकाने में वे पक्के हैं, किन्तु जो मानव चरित्र से अभिज्ञ हैं एवं बहुत दिनों तक मनुष्यों के साथ मिलते-जुलते रहे हैं, उनकी पकड़ में वे प्रथम परिचय में ही आ जाते हैं।

लालबाजार में दो तल्ले के एक बड़े कमरे में हम दोनों को एक साथ रखा गया। खाने को मिला थोड़ा-सा जलपान। कुछ देर बाद दो अंग्रेज कमरे में घुसे, बाद में पता चला कि उनमें से एक थे स्वयं पुलिस कमिश्नर हैलिडे साहब। हम दोनों को एक साथ देख हैलिडे सार्जेंट पर बरस पड़े, मुझे दिखाकर बोले, "खबरदार, इस व्यक्ति के साथ ना कोई रहे ना कोई बोले।" तुरन्त ही शैलेन्द्र को हटा दूसरे कमरे में बंद कर दिया गया और जब सब चले गये तो हैलिडे साहब मुझसे पूछते हैं – "इस कापुरुषोचित दुष्कर्म में भाग लेते हुए आपको शर्म नहीं आती?" "मैं इसमें लिप्त था यह मान लेने का आपको क्या अधिकार है?" उत्तर में हैलिडे ने कहा, "मैंने मान नहीं लिया, मैं सब जानता हूँ।" मैंने कहा, "क्या जानते हैं या क्या नहीं यह आपको ही पता होगा पर मैं इस हत्याकाण्ड के साथ अपना सम्पर्क पूर्णतया अस्वीकार करता हूँ।" हैलिडे ने और कोई बात नहीं की।

उस रात मुझे देखने और कई दर्शक आये, सभी पुलिस के। इनके आने में एक रहस्य निहित था, उस रहस्य की आज तक मैं थाह नहीं ले पाया। गिरफ्तारी से डेढ़ माह पहले एक अपरिचित सज्जन मुझसे मिलने आये थे, उन्होंने कहा था, "महाशय, आपसे मेरा परिचय नहीं है फिर भी आपके प्रति श्रद्धा-भक्ति है, इसीलिए आपको सतर्क करने आया हूँ और जानना चाहता हूँ कि कोननगर में किसी से आपका परिचय है क्या? वहाँ कभी गये थे या वहाँ कोई घर-बार है क्या?" मैंने कहा, "घर नहीं है, कोननगर एक बार गया था, कइयों से परिचय भी है।" उन्होंने कहा, "और कुछ नहीं कहूँगा पर कोननगर में अब और किसी से मत मिलियेगा, आप और आपके भाई बारीन्द्र के विरुद्ध दुष्टजन षड्यन्त्र रच रहे हैं, शीघ्र ही वे आप लोगों को विपत्ति में डालेंगे। मुझसे और कोई बात ना पूछें।" मैंने कहा, "महाशय, मैं समझ नहीं पाया इस अधूरे संवाद से मेरा क्या उपकार हुआ, फिर भी आप उपकार करने आये थे उसके लिए धन्यवाद। मैं और कुछ नहीं जानना चाहता। भगवान् पर मुझे पूर्ण विश्वास है, वे ही सदा मेरी रक्षा करेंगे, उस विषय में स्वयं यत्न करना या सतर्क रहना निरर्थक है।"

उसके बाद इस सम्बन्ध में और कोई खबर नहीं मिली। मेरे इस अपरिचित हितैषी ने मिथ्या कल्पना नहीं की थी, इसका प्रमाण उस रात मिला। एक इंस्पेक्टर और कुछ पुलिस कर्मचारियों ने आकर कोननगर की सारी बातें जान लीं। उन्होंने पूछा, "कोननगर क्या आपका आदि स्थान है? कोननगर में बारीन्द्र की कोई सम्पत्ति है क्या?" – इस तरह के अनेक प्रश्न पूछे गये। बात क्या है यह जानने के लिए मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर देता गया। इस चेष्टा में सफलता नहीं मिली; किन्तु प्रश्नों से और पुलिस के पूछने के ढंग से लगा कि पुलिस को जो खबर मिली है वह सच है या

झूठ इसकी छान-बीन चल रही है। अनुमान लगाया जैसे ताई – महाराज के मुकद्दमे में तिलक को भाण्ड, मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और अत्याचारी करार कर देने की चेष्टा हुई थी एवं उस चेष्टा में बम्बई सरकार ने योग दे प्रजा के धन का अपव्यय किया था, - वैसे ही मुझे भी कुछ-एक लोग मुसीबत में डालने की चेष्टा कर रहे हैं।

रविवार का सारा दिन हवालात में कटा। मेरे घर के सामने सीढ़ी थी। सवेरे देखा कि कुछ अल्पवयस्क लड़के सीढ़ी से उतर रहे हैं। शक्ल से नहीं जानता था पर अन्दाज़ लगाया कि ये भी इसी मुकद्दमे में पकड़े गये हैं, बाद में जान पाया कि ये थे मानिकतला बगीचे के लड़के। एक माह बाद जेल में उनसे बातचीत हुई। कुछ देर बाद मुझे भी हाथ-मुँह धोने नीचे ले जाया गया – नहाने का कोई प्रबन्ध नहीं था अतः नहीं नहाया। उस दिन सवेरे खाने को मिला दाल-भात, जबरदस्ती कुछ-एक कौर उदरस्थ किये, बाकी छोड़ना पड़ा। शाम को मिले मुरमुरे। तीन दिन तक यही था हमारा आहार। किन्तु इतना जरूर कहूँगा कि सोमवार को सार्जेंट ने स्वयं ही मुझे चाय और टोस्ट खाने को दिये।

बाद में सुना कि मेरे वकील ने कमिश्नर से घर से खाना भेजने की अनुमति माँगी थी पर हैलिडे साहब नहीं माने। यह भी सुना कि आसामियों से वकील या एटर्नी का मिलना निषिद्ध है। पता नहीं यह निषेध कानूनन ठीक है या नहीं। वकील का परामर्श मिलने से यद्यपि मुझे कुछ सुविधा होती फिर भी नितान्त आवश्यकता नहीं थी, किन्तु उससे अनेकों को मुकद्दमें में क्षति पहुँची। सोमवार को हमें कमिश्नर के सामने हाज़िर किया गया। मेरे साथ अविनाश और शैलेन थे। सबको अलग-अलग दल में ले जाया गया। पूर्वजन्म के पुण्यफल से हम तीनों पहले गिरफ्तार हुए थे और कानून की जटिलता काफी अनुभव कर चुके थे और इसलिए तीनों ने ही कमिश्नर के आगे कुछ भी बोलने से इन्कार कर दिया। अगले दिन हमें थौर्नहिल मैजिस्ट्रेट की कचहरी में ले जाया गया। इसी समय श्रीयुत कुमारकृष्ण दत्त, मान्युएल साहब और मेरे एक सम्बन्धी से भेंट हुई। मान्युएल साहब ने मुझसे पूछा, "पुलिस कहती है आपके घर में अनेक सन्देहजनक चिट्ठी-पत्री मिली हैं। ऐसी चिट्ठियाँ या कागजात क्या सचमुच थे?" मैंने कहा, "निस्सन्देह कह सकता हूँ, नहीं थे, होना बिलकुल असम्भव है।" निश्चय ही तब sweets letter या scribbling (घसीट लेख) की बात नहीं जानता था। अपने सम्बन्धी से कहा, "घर में कह देना कि डरें नहीं, मेरी निर्दोषिता सम्पूर्णतया प्रमाणित होगी।" उस समय से ही मेरे मन में दृढ़ विश्वास उपजा कि यह होगा ही। पहले-पहल निर्जन कारावास में मन जरा विचलित हुआ किन्तु तीन दिन प्रार्थना और ध्यान में बिताने के फलस्वरूप निश्चल शान्ति और अविचलित विश्वास ने प्राण को पुनः अभिभूत किया।

कारावास की कहानी (भाग-2)

श्री अरविन्द

'कारा-काहिनी' (कारावास की कहानी) का अन्तिम हिस्सा मार्च 1910 में 'सुप्रभात' में छपा था, तब तक श्री अरविन्द ने कलकत्ता छोड़कर चन्दरनगर में शरण ले ली थी। ब्रिटिश सरकार के फिर से पीछे पड़ने पर पॉण्डिचेरी आने से पहले वे चालीस दिनों तक गुप्त रूप से रहे, और 'कारा-काहिनी' अधूरी रह गयी। लेकिन नलिनीकान्त गुप्त के लेख, - जो श्री अरविन्द के साथ-साथ नज़रबन्द रहे – हमें पुलिस तथा अदालत के बीच के सम्बन्ध तथा कैदियों के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में बतलाते हैं।

श्री अरविन्द का लेख उस स्थान पर आकर समाप्त हो जाता है जहाँ अभियुक्तों को एक बड़े हॉल में स्थानान्तरित कर दिया गया था। उन्हें बन्दी बने डेढ़ महीना बीत गया। जून के आखिरी दिन थे। तब तक श्री अरविन्द तथा हेमचन्द्र दास – जिन्हें विशेष रूप से खतरनाक समझा जाता था – को एकदम से अलग रखा गया था जबकि बाकी कैदियों में से अधिकतर एक-एक कोठरी में तीन-तीन रखे गये थे। यद्यपि उन्हें एकदम से एकान्तवास की कठिन परिस्थितियों से नहीं गुजरना पड़ा फिर भी स्थानाभाव तथा स्वच्छता इत्यादि की कुव्यवस्था उनके लिए दुःख-दर्द तथा अपमान का निरन्तर उत्स थी। अतः इस परिवर्तन को सबने हँसी-खुशी के माहौल के साथ स्वीकारा। केवल श्री अरविन्द औरों के उत्साह में हिस्सा नहीं लेते थे, उन्होंने निर्जनता को सराहना शुरु कर दिया था और योगाभ्यास के लिए उसे अनिवार्य मानते थे।

यह नया स्थान एक बड़ा कमरा था जो एक बड़े बरामदे में खुलता था और उसके सामने था एक बड़ा मैदान जहाँ कैदी पानी की कमी के जञ्जाल में फंसे बिना अपने नित्य कर्मों से निवृत्त हो सकते थे। इससे भी अधिक अच्छा यह हुआ कि सब एक साथ जुट गये और अब वे बेरोक-टोक एक-दूसरे से मिलते, फुर्सत से बातचीत करते या मिलकर काम-काज करते थे। यह बड़ा कमरा आधी ऊँचाई की तीन विभाजक दीवारों से बंटा था और अपने-अपने सादृश्य के अनुसार तीन दल बन गये थे।

नलिनीकान्त गुप्त लिखते हैं, श्री अरविन्द इन 'कमरों' में से एक कमरे के एक कोने में ही रहते थे। पहली दफ़ा उन्होंने अपने-आपको हमारे बीच पाया और जल्दी ही, उनके भाई बारीन की तरह वे सभी, जिन्होंने आध्यात्मिक जीवन के प्रति आकर्षण का अनुभव किया था, श्री अरविन्द

के चारों ओर आ जुटे। बुद्धिजीवियों ने बीच के कमरे में अपना आसन जमाया जिसकी बागडोर संभाली उपेन्द्र ने, रही बात तीसरे की, तो वहाँ था नास्तिकों और तर्कबुद्धिवादियों का राज, हेमचन्द्र दास थे इसके कर्ता-धर्ता।

"...हम मन बहलाने के लिए विभिन्न प्रकार के खेल खेला करते थे: प्रहसन, मूकाभिनय, पाठ, गीत। हमारी खुशी पर कोई पानी नहीं फेर सकता था। इस सबके बीच श्री अरविन्द अपने कोने में ध्यान और समाधि में निरत रहते लेकिन बीच-बीच में हमारे इन मनबहलाव के खेलों में हिस्सा लेने से भी नहीं हिचकिचाते...."

जल्दी ही कैदियों को किताबों की स्वीकृति मिल गया और इस तरह उन्होंने एक छोटा-मोटा पुस्तकालय खड़ा कर लिया जिसमें उपनिषद्, पुराण, भगवद्गीता, रामकृष्ण के वचन तथा विवेकानन्द साहित्य के साथ-साथ बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास, शेक्सपियर के नाटक, बेकन के लेख इत्यादि भी सम्मिलित थे। और किताबें ना मिल पाने के कारण लोग इन्हीं चीज़ों को पढ़ते और दुबारा-तिबारा पढ़ते। इस बीच उनके अन्दर एक तरह की विह्वलता पनपने लगी थी। क्या होगा? क्या उन्हें अपना सारा जीवन जेल में ही बिताना होगा? और अगर उनमें से कइयों को फाँसी हो गयी तो?

ऐसे समय बारीन ने भागने की बात सोची। अपने कुछ साथियों को साथ ले उसने अपनी योजना बनानी शुरु की और इसके लिए चन्दरनगर के क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क साधे। विचार यह था कि एक शाम को इसे क्रियान्वित किया जाये जब कुछ-एक उदासीन-से सिपाहियों की निगरानी में सभी को बाहर खुले मैदान में आने-जाने की छूट मिलती थी। उस समय अपने साथियों द्वारा बाहर से अन्दर फेंकी गयी सीढ़ियों तथा रस्सियों के सहारे चढ़कर हाथ में रिवॉल्वर लिये वे जेल की सरहद को पार करने की योजना बना रहे थे और बाहर तैयार खड़ी घोड़ागाड़ियाँ उन्हें तीर की तेजी से गंगा के तट पर पहुँचा देती जहाँ से नाव लेकर वे सब सुन्दर वन की दिशा में चल पड़ते। विचार यह था कि हिंस्त्र पशुओं से भरे हुए इस वन में पुलिस छान-बीन करने का जोखिम ना उठायेगी।

सब इस रूमानी योजना से सहमत थे, लेकिन श्री अरविन्द ने तो इस योजना में किसी भी तरह से शरीफ होने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "रही मेरी बात, मैं तो न्यायालय में उपस्थित होऊँगा।"

दूसरी तरफ, कानाईलाल दत्त और सत्येन बोस से प्रेरित हो, कैदियों का एक और दल एकदम से दूसरी ही तरह की योजना बनाने में जुटा था। वह थी गद्दार नरेन्द्रनाथ गोस्वामी को खत्म करने की योजना। शायद नरेन्द्रनाथ यह भाँप गया था कि उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है क्योंकि जहाँ कई एकदम गुप्त रूप से साजिश कर रहे थे वहाँ दूसरे अपने भावों को छिपा नहीं रहे थे, उन्होंने तो उसे धमकी तक दे दी थी। पुलिस को गोस्वामी की खास जरूरत थी और वह उसे उन सहकैदियों की दया पर नहीं छोड़ सकती थी जो उसे चुपचाप खत्म कर देने में समर्थ थे। और फिर सुरक्षा की दृष्टि से नरेन्द्रनाथ को यूरोपियन कैदियों के लिए आरक्षित विभाग में स्थानान्तरित कर दिया गया।

इस बीच, सत्येन बोस को, जो प्रायः दमे से पीड़ित रहते थे – जेल के अस्पताल में भरती कर दिया गया। उधर कानाईलाल दत्त को अचानक कोई अजीब बीमारी लग गयी और वे भी अस्पताल में आ गये। अब सत्येन ने गोस्वामी के साथ सम्पर्क साधा। अपनी बीमारी के बारे में शिकायत करते हुए उसने गोस्वामी से कहा कि बीमारी के कारण जेल-जीवन उसके लिए असहनीय हो उठा है। गोस्वामी को मरीज़ से मिलने-जुलने की स्वीकृति मिल गयी और पहली दो मुलाकातों में ही मरीज़ ने उसे अपने विश्वास में ले लिया और इस तरह गोस्वामी ने कई बहुमूल्य जानकारियाँ मिलने की आशा से तीसरी बार मिलना स्वीकार कर लिया। इस भाँति 31 अगस्त को वह हमेशा की तरह अपने अंग्रेज अंगरक्षक को अलग ले गये। कानाईलाल ने भी वहाँ तक पहुँचने में देर नहीं लगायी। कुछ क्षणओं की बातचीत के बाद अचानक दोनों कैदियों ने रिवॉल्वर निकालकर गोस्वामी को मार डालने की चेष्टा की। गोस्वामी तथा उसके अंगरक्षक दोनों ही आहत हुए लेकिन फिर भी दोनों कुछ दूर तक भागने में सफल हुए, इधर सत्येन और कानाईलाल जेल की सीढ़ियों और गैलरियों से गोलियाँ बरसाते हुए किसी के बीच में पड़ने की कोशिश को विफल करते हुए उनके पीछे-पीछे भागे। अन्त में एक गोली गोस्वामी की रीढ़ की हड्डी में जा लगी। वह नाली में लुढ़क गया, इतने में किसी अंग्रेज कैदी ने आक्रामकों को अपने नियन्त्रण में कर लिया।

नलिनीकान्त गुप्त लिखते हैं, “तब,खतरे की घण्टी भीषण आवाज में झनझना उठी जिसे विकट संकटकाल में ही बजाया जाता था। उसी समय पागलों की भाँति भागता हुआ एक कैदी यह चिल्लाने लगा, “नरेन गोसाईं ठण्डा हो गया...” तुरन्त संगीन लिए पुलिस की एक टुकड़ी तेजी से उस आँगन में आ घुसी जहाँ हम रोज की अपनी सैर कर रहे थे। पुलिस ने हमें भेड़ के झुण्ड की तरह हमारे आवास में धकेल दिया मानों हम बलि के पशु हों। बिना किसी सद्भाव के हमारी

15 अगस्त, 2019

सबकी तलाशी ली गयी, फिर सबको एक पंक्ति में खड़ा करके दिया गया : सबको हवालात में बन्द कर दिया जाये!"

"...जेल के अधिकारीगण यह समझ गये थे कि ऊपर से दिखने वाली मधुरता के नीचे हम सचमुच किस धातु के बने थे। यह हमारे "स्वर्णिम युग" का अन्त था। जिन सुविधाओं तथा लाभों का हम मजा लूटते थे उन सब पर पूर्णविराम लग गया। उसके बाद तो बस कचहरी ही वह एकमात्र स्थान बच रहा जहाँ हम एक-दूसरे से मिल सकते थे।"

आखिर किस तरह से कैदी इन अस्त्र-शस्त्रों को जुटा पाये? यह बात जेल के अधिकारियों और पुलिस की समझ में ना आयी। क्या रिवॉल्वर बिस्कुट के डिब्बों में आये, या फिर बड़े-बड़े कटहलों में जो कई-कई किलो के वजनदार फल होते हैं या फिर बड़ी मछलियाँ का पेट चीरकर रखे गये थे? क्योंकि, उस समय जब हम सब साथ रहते थे कैदियों को अपना खाना खुद बनाने की और बाहर की और बाहर से राशन मंगवाने की छूट थी। जो पुलिसवाला कानाईलाल से इस विषय में पूछ-ताछ कर रहा था उससे कानाई ने अपने अभ्यासगत विनोद के साथ कहा, "खुदीराम की आत्मा ने मुझे रिवॉल्वर दी।" मुजफ़्फ़रपुर के हत्या-काण्ड के सिलसिले में खुदीराम को हाल में ही फांसी लगी थी।

सचमुच, कैदियों के हाथों में ये हथियार सबसे सरल तरीके से आये। चूँकि उनके आचरण ने पुलिसवालों पर विश्वास जमा लिया था अतः उन्हें माँ-बाप और इष्ट-मित्रों से मिलने की अनुमति मिल गयी थी। बाहर के कमरे में कैदियों और मिलने वालों के बीच सरियों का एक जंगला भर था जिसमें से आसानी से चीज़ों का आदान-प्रदान हो सकता था। विदा लेते वक्त दोनों पक्ष के लोग प्रेम के वशीभूत, सरियों के और भी पास आ जाते थे, इस तरह के भावोद्रेक के समय जब दोनों तरफ से हाथ मिलते, शाल की आड़ में या साड़ी के आँचल में छिपाकर रिवॉल्वर एक हाथ से दूसरे में स्थानान्तरित हुए। सन्तरियों की दृष्टि से बचने के लिए बन्दियों ने एक चाल चली। कैदी जहाँ सोते थे वहाँ की जमीन जरा उठी हुई थी, मिट्टी के फर्श पर एक चादर बिछा कर वे सो जाया करते थे, जिनके पास रिवॉल्वर था उन्होंने अपनी इस "शय्या" खोद कर उसे अन्दर गाड़ दिया था।

कानाईलाल को निस्सन्देह कुछ डर-सा लगा रहता था अतः वह सिर से पैर तक चादर तानकर दिन का अधिकांश समय वहीं लेटे-लेटे ही गुजारता और अगर उत्सुकतावश कोई उससे उसका कारण पूछता तो वह जवाब में कहता, "मैं आन्तरिक जगतों में प्रवेश करने की कोशिश में लगा हूँ।" अपने जजों के सामने उसने यह घोषणा की थी कि गोसाईं का काम तमाम उसने इसलिए

किया क्योंकि वह देशद्रोही था। सत्येन बोस के साथ जब उसे भी मृत्युदण्ड देने की घोषणा कर दी गयी तो उसने अपील करने से साफ इन्कार कर दिया "शाश्वत आत्मा को कौन मार सकता है?" दोनों ने वही काम किया जो उन्हें करना था, उन्होंने जिरह की तारीख से पहले गोस्वामी को रास्ते से हटा दिया ताकि उसके वे बयान जो कैदियों को बड़े जोखिम में डाल सकते थे, विशेषकर श्री अरविन्द को, वे सभी रद्द हो गये। क्योंकि मानिकतल्ला बगीचे से कुछ दस्तावेज़ मिले थे जिनमें कुछ में 'बड़ा कर्ता' और कइयों में 'छोटा कर्ता' लिखा था। गोस्वामी ने पुलिस को बताया था कि 'बड़ा कर्ता' से श्री अरविन्द की ओर संकेत है और 'छोटा कर्ता' से बारीन की ओर।

अभियोग लगाने वालों को अपने मुख्य मुखबिर से हाथ धोना पड़ा, लेकिन फिर भी श्री अरविन्द के सिर पर कई बड़े-बड़े इल्ज़ाम लगे थे, उनकी बहन सरोजनी ने उनके बचाव के लिए वकील जुटाने के लिए आवश्यक धन-राशि के लिए अपने देशवासियों से अपील की:

"मेरे देशवासी इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि मेरे भाई, अरविन्द घोष के विरुद्ध एक गम्भीर इल्ज़ाम लगाया गया है लेकिन मुझे पूरा विश्वास है और मेरे पास यह सोचने के कारण हैं कि मेरे देशवासियों में से अधिकतर का भी यही विश्वास है कि वे पूरी तरह निर्दोष हैं। मेरे ख्याल से अगर कोई योग्य वकील उनके बचाव के लिए आये तो उनके छूटने की सम्भावना है। लेकिन चूँकि अपने-आपको देशसेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए उन्होंने गरीबी का प्रण ले रखा है अतः उनके पास किसी श्रेष्ठ वकील को नियुक्त करने के साधन नहीं हैं। अतः उनकी तरफ से मैं जनता की भावना और अपने देशवासियों की उदारता से अपील करने की कष्टकर अनिवार्यता महसूस कर रही हूँ। मैं जानती हूँ कि सभी उनके राजनैतिक मतों से सहमत नहीं हैं। लेकिन एक बात मैं भद्रता से कहना चाहूँगी कि बहुत कम भारतीय ऐसे होंगे जो उनकी महान् उपलब्धियों, उनके आत्मोत्सर्ग, देश के लिए उनकी एकनिष्ठ भक्ति और उनके चरित्र की उच्च आध्यात्मिकता की सराहना ना करते हों, ये बातें मुझे-एक नारी को-इस बात का प्रोत्साहन देती हैं कि मैं भारत के हर पुत्र और पुत्री के सम्मुख खड़ी होकर एक भाई के बचाव के लिए – जो मेरा भाई होने के साथ-साथ उनका भी भाई है, सहायता की माँग करूँ।"

इसके कुछ समय के बाद ही महाशय चित्तरञ्जन दास – जो नामी वकील और उत्साही देशभक्त होने के साथ-साथ श्री अरविन्द के पुराने मित्र भी थे – उनके बचाव के लिए आ गये। अब तो मुकद्दमे की सारी धारा ही बदल गयी। सरकारी अभियोक्ता द्वारा जुटाये गये सभी प्रमाणों को ब्योरे से देखा गया, दोषारोपण के सभी तर्कों का खण्डन किया गया, नॉर्टन महोदय के सुन्दर

15 अगस्त, 2019

ढाँचे ढह गये : चित्तरञ्जन दास के तीक्ष्ण संवादों से ब्रिटिश सरकार के अधिवक्ता पर चुप्पी छा गयी। जिस दिन चित्तरञ्जन दास को अपना अन्तिम वक्तव्य सुनाना था उस दिन उनकी प्रेरक वाणी ने समस्त जनसमूह को झकझोर दिया। नलिनीकान्त गुप्त ने अपने संस्मरणों में इस घटना का उल्लेख किया है:

अचानक हॉल में पूरी चुप्पी छा गयी; चित्तरञ्जन दास की आवाज संयत रूप से धीरे-धीरे उठती हुई अधिकाधिक गूँजने लगी। हम सब उठ गये और एक महान् शान्ति में, एकाग्रचित, अचञ्चल हम सबने चित्तरञ्जन के शब्द सुने। ऐसा लग रहा था मानों किसी भागवत शक्ति ने उन पर अधिकार कर लिया हो और वही उन शब्दों के पीछे गूँज रही थी:

"इस वाद-विवाद के नीरव हो जाने के बहुत बाद, इस संघर्ष और उथल-पुथल के शान्त हो जाने के बहुत बाद, इनके मर-खप जाने के बहुत बाद भी इन्हें देशभक्ति के कवि, राष्ट्रीयता के मसीहा और मानवता के प्रेमी के रूप में याद किया जायेगा। इनके देहान्त के बहुत बाद इनके शब्द केवल भारत में ही नहीं, बल्कि समुद्र-पार देश-देशान्तरों में भी गुंञ्जित और प्रतिगुंञ्जित, होते रहेंगे...मेरा दावा है कि इस स्थिति का मनुष्य केवल आपकी अदालत के सामने नहीं, विश्व-इतिहास की अदालत के सामने खड़ा है।"

जज चार्ल्स पौटर्न बीचक्राफ्ट भी श्री अरविन्द को बहुत पहले से जानते थे। एक ही काल में दोनों ने केम्ब्रिज में अध्ययन किया था तथा इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में भी दोनों साथ-साथ गये थे। श्री अरविन्द के भारत आने के तीन महीने पहले नवम्बर 1892 में बीचक्राफ्ट की बंगाल में नियुक्ति हुई जहाँ उन्होंने मजिस्ट्रेट की शिक्षा पायी, फिर उन्हें एक इलाके के प्रशासन का कार्य-भार सौंप दिया गया। न्याय की सहज भावना और उनकी निष्पक्षता ने उन्हें भारतीयों के बीच बहुत लोकप्रिय बना दिया था। 1905 में जब लोग बंगाल-विभाजन के विरोध में भड़क उठे थे तब बीचक्राफ्ट को अलीपुर के इलाके की न्याय-व्यवस्था का कार्यभार सौंपा गया। 1908 में उन्होंने अदालत के ऐसे बहुचर्चित मुकद्दमे की अध्यक्षता की जैसा कभी कलकत्ते में नहीं हुआ : चालीस व्यक्तियों पर "राजा के विरुद्ध युद्ध करने का" इल्ज़ाम लगाया गया था। श्री अरविन्द के साथ आखिरी बार मुलाकात हुए बरसों बीत गये थे। अब दोनों का आमना-सामना हुआ था। एक अदालत की कुर्सी पर आसीन थे तो दूसरे अभियोगियों की पंक्ति में, कठघरे में बन्दी, जिन पर अभेद्य पहरा बिठाया गया था।

15 अगस्त, 2019

बीचक्राफ्ट को श्री अरविन्द के क्रान्तिकारी होने का विश्वास ही नहीं हो पा रहा था और तब तो और भी कम जब एक जज-निर्धारक ने कहा कि यह बात अकल्पनीय है कि इनके जैसे उच्च कुलीन तथा बौद्धिक क्षमतावान् व्यक्ति ने कभी ऐसे बचकाने षड्यन्त्र की सफलता पर विश्वास किया हो या कभी इसमें किसी भी तरह का हिस्सा लिया हो। बीचक्राफ्ट ने श्रीअरविन्द के 'वन्दे मातरम्' के तथा अन्य लेखों, उनके भाषणों, उनके पत्र-व्यवहार इत्यादि को पढ़ा, उनका विश्लेषण किया था। उनके साहित्यिक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की – लेकिन सबसे अधिक वे उन लेखों में प्रकाशित आदर्श की उच्चता से प्रभावित हुए थे। उनका यह विश्वास हो चला था कि श्री अरविन्द के वे लेखांश जिनका उपयोग दोष को सिद्ध करने के लिए किया गया था, वे सचमुच उसी उच्च आदर्श से स्पन्दित थे और उनका उद्देश्य भारत के पुनरुज्जीवन के सिवाय और कुछ ना था।

अपने फैसले के मूल पाठ, जिसमें तीन सौ से कम पृष्ठ नहीं हैं, बीचक्राफ्ट ने श्री अरविन्द को एक प्रतिभाशाली, "बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति वाले" ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है जिनके लिए भारत की स्वाधीनता का युद्ध प्रमुख रूप से आध्यात्मिक महत्व रखता था।

उन्होंने चित्तरञ्जन दास के तर्कों का ही सहारा लिया : श्री अरविन्द के राजनैतिक विचारों में उनके दार्शनिक विश्वास के संस्कार हैं, वेदान्त जिस आदर्श को व्यक्ति के लिये प्रस्तुत करता है, श्री अरविन्द उसी को भारतवासियों के सामने रख रहे हैं : "जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तरस्थ दिव्यत्व को पाना है और इस तरह जो कुछ उसके अन्दर उत्तम है उसे चरितार्थ करना है, उसी तरह किसी देश को अपनी आत्मा को खोजना होगा ताकि वह अपने अन्दर की उत्तम वस्तु को अभिव्यक्त कर सके। श्री अरविन्द कहते हैं कि इस तरह की मुक्ति कोई विदेशी साधनों द्वारा नहीं वरन् स्वयं राष्ट्र को ही पाना होगा।" इसी कारण वे लोगों से यही कहते रहते हैं कि वे किसी विदेशी सहायता पर निर्भर रहने की अपेक्षा अपनी मुक्ति को स्वयं प्राप्त करें।

इसके बाद बीचक्राफ्ट ने इल्ज़ाम के सभी कागजों का विश्लेषण श्री अरविन्द की इस विशाल दृष्टि के प्रकाश में किया; वे कहते हैं : अगर हम यह मानकर चलें कि लेखक षड्यन्त्रकारी है तो हमें इससे कई संदेहास्पद अनुच्छेद मिल जायेंगे, लेकिन अगर हम किसी पूर्वाग्रही विचार के बिना इसे पढ़ें तो हमें इसमें ऐसा कुछ भी नहीं मिलेगा जिससे शंका पैदा हो।

सबसे अधिक संकट में डालने वाली चीज़ थी प्रसिद्ध "मिष्टान्न पत्र" जिसे बारीन ने श्री अरविन्द को लिखा था। ऐसा माना गया कि इस पत्र का षड्यन्त्र के साथ गहरा सम्बन्ध है। अभियोगकर्ता

को "मिष्टान्न" शब्द में "बम" शब्द की प्रिय ध्वनि सुनायी दे रही थी। बीचक्राफ्ट ने यह प्रमाणित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी कि यह पत्र मिथ्या है और अन्ततः उसे नहीं रखा गया।

नरेन्द्रनाथ गोस्वामी के बयान भी संकटपूर्ण हो सकते थे लेकिन उनका अब कोर्ट में उपयोग नहीं किया जा सकता था। अतः सरकारी वकील को अभियोगी को अपने चंगुल में फंसाने के लिए उन दो तत्वों से वञ्चित रहना पड़ा जिनकी सबसे अधिक जाँच-पड़ताल होनी थी।

दूसरी तरफ कई ठोस तथ्य श्री अरविन्द की निर्दोषता प्रमाणित कर रहे थे : यह तथ्य कि मानिकतल्ला के बगीचे में उनका आना-जाना नहीं था, यह तथ्य भी कि 'वन्दे मातरम्' के अपने लेखों में वे हिंसा का अनुमोदन नहीं किया करते थे। ये चीज़ें और इसके साथ-साथ बचाव द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक तर्क-वितर्कों द्वारा – मुख्य रूप से बीचक्राफ्ट द्वारा – श्री अरविन्द बरी हो गये। बीचक्राफ्ट ने अपनी रिपोर्ट इन शब्दों में समाप्त की :

"भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी व्यक्ति के लिए यह खतरनाक हो सकता है कि वह चीज़ों की वर्तमान व्यवस्था से असंगत सिद्धान्तों को प्रकाशित करे, कई परिस्थितियों में इसे राजद्रोह के आरोप में उचित ठहराया जा सकता है। इस तरह का आरोप अरविन्द पर लगाया जा सकता है या नहीं इसको जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुद्दा तो यह है कि क्या उनके लेख और भाषण जो स्वयं अपने-आप में देश के पुनरुज्जीवन के अतिरिक्त और किसी चीज़ का समर्थन नहीं करते और इस केस में उनके विरुद्ध उठाये गये तथ्य क्या इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वे षड्यन्त्र के सदस्य थे? और सभी प्रमाणों को इकट्ठा कर लेने पर मेरा यह मत है कि मेरी तरफ से ये न्यायसंगत ना होगा कि इतने बड़े आरोप के लिए उन्हें दोषी सिद्ध कर दूँ, क्योंकि प्रमाण अपर्याप्त हैं।"

6 मई 1909 की सुबह जब फैसला सुनाया जाने वाला था, 500 सिपाहियों की एक टुकड़ी जेल और अदालत के रास्तों पर कैदियों द्वारा पलायन के सभी प्रयासों को रोकने, प्रदर्शन इत्यादि से बचने और जज को पूरी सुरक्षा प्रदान करने के लिए गश्त लगा रही थी। असाधारण सुरक्षा का इतंजाम किया गया था। जब बीचक्राफ्ट ने सुनवाई-कक्ष में प्रवेश किया, जहाँ सभी अभियोगी इकट्ठे थे, तो सारे हॉल में एक सन्नाटा-सा छा गया। बिना किसी प्रस्तावना के बीचक्राफ्ट ने अपराधियों की सूची पढ़ दी। एक कैदी ने उस मुहूर्त का वर्णन करते हुए कहा, "क्षण भर के लिए बीचक्राफ्ट उस धीरता से डिग गये जो न्यायधीश के लिए उचित होती है और हम लोगों ने लक्ष्य किया कि बारीन्द्र कुमार घोष और उल्लासकर दत्त के लिए मृत्युदण्ड की घोषणा करते समय

उनके स्वर में हल्का-सा कम्पन आ गया था, इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने और अस्त्र-शस्त्र जुटाने इत्यादि के अपराध में दोषी करार दिया गया था। अपील के लिए उन्हें आठ दिनों की मोहलत दी गयी। अन्य कैदियों में से छह को कालेपानी की सजा हुई, छह को कुछ वर्षों का निर्वासन मिला। बाकी को, जिनके नाम पढ़कर सुनाये नहीं गये, जिनमें श्री अरविन्द भी थे, निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया गया। इन लोगों को बन्दी बने हुए एक साल गुज़र गया था।"

मुक्त हो जाने के बाद श्री अरविन्द ने "बंगाली" पत्रिका के प्रकाशक को यह पत्र भेजा :

"कृपा करके मुझे अपनी पत्रिका के स्तम्भ द्वारा उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता का गंभीर भाव प्रदर्शित करने की अनुमति दीजिये जिन्होंने मुकद्दमे के समय मेरी सहायता की। अपने उन असंख्य परिचित तथा अपरिचित शुभचिन्तकों के नाम भला मैं कैसे जानूंगा जिन्होंने अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार मेरे बचाव के लिए रुपया जुटाने में योगदान दिया। ना ही मैं उन सबको व्यक्तिगत रूप से अपना धन्यवाद भेज सकूंगा, मैं उनसे यह विनती करता हूँ कि वे सब मेरी कृतज्ञता की इस सार्वजनिक अभिव्यक्ति को स्वीकार करें। मेरे जेल से छूटने के बाद मेरे पास कई तार और चिट्ठियाँ पहुँची लेकिन प्रत्येक को उत्तर दे पाने के लिए असमर्थता व्यक्त की चूँकि वे बहुत ही बड़ी संख्या में हैं। मैं अपने देशवासियों के लिए जो थोड़ा-सा काम कर पाया, उसके बदले में उन्होंने मुझ पर जितना प्रेम उंडेला वह प्रचुर रूप से उस प्रत्यक्ष दुर्भाग्य या मुसीबत की क्षतिपूर्ति है जो मेरी सार्वजनिक गतिविधियों द्वारा मुझ पर आ सकती थी। जेल से अपनी मुक्ति का श्रेय मैं किसी मानव हस्तक्षेप को नहीं देता बल्कि सबसे पहले मैं हम सबकी माँ की सुरक्षा के प्रति आभारी हूँ, हमारी सबकी माँ जिन्होंने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा, बल्कि मुझे हमेशा अपनी बाँहों में रखा और दुःख-दर्द और सभी दुर्भाग्यों से मेरी रक्षा की और फिर मैं आभारी हूँ उन हजारों लोगों की प्रार्थनाओं के प्रति जो मेरे बन्दी बनने के साथ-साथ मेरे लिए माँ की ओर उठीं। अगर मेरे देशप्रेम ने मुझे खतरे में डाला तो मेरे देशवासियों ने मुझे उस खतरे से सकुशल बाहर निकाला।"

श्री अरविन्द की जेल से मुक्ति से ब्रिटिश गवर्नमेंट को अपनी हार का-सा अनुभव हुआ। उनके अनुसार बीचक्राफ्ट के फैसले पर कई एक स्थानों पर प्रश्न उठाये जा सकते थे : बीचक्राफ्ट यह ठीक तरह से नहीं समझ पाये कि "श्री अरविन्द का धर्म था अंग्रेजों का भारत से निष्कासन," वह चाहे किसी भी उपाय से क्यों ना हो, भले आध्यात्मिक शक्ति द्वारा क्यों ना हो। ना ही उन्होंने श्री अरविन्द के लेखों और उनके भाषणों को गहराई से परखा, शोले भड़काने वाले वाक्यों के

"निर्दोष अर्थ" लगाये, और यह ना देखा कि उनके कुछ अप्रकाशित लेख, जिन्हें बीचक्राफ्ट ने सरल दार्शनिक चिन्तन कह दिया था वे सचमुच "उपयोग करने के लिए प्रस्तुत शस्त्रास्त्र" थे। सबसे अधिक तो उन्होंने ऐसे तथ्यों को अस्वीकार करने की गलती की जो ब्रिटिश सरकार की नजरों में दोषी सिद्ध होने के यथासम्भव प्रमाण थे : "मिष्टान्न पत्र", दोषारोपण का मुख्य विषय जिसे बीचक्राफ्ट ने जाली कहकर परे हटा दिया और कोई महत्व ना दिया, अपने भाई बारीन के साथ के सम्बन्ध, दल के कई सदस्यों के साथ उनका पत्र-व्यवहार, यह तथ्य कि वे उनके "अध्यक्ष" ही नहीं बल्कि एक तरह से गुरु समझे जाते थे – इन सब गम्भीर धारणाओं को बीचक्राफ्ट ने इस बहाने एक ओर सरका दिया कि अरविन्द कभी मानिकतल्ला के बगीचे में गये ही नहीं। बंगाल सरकार के सेक्रेटरी जनरल लिखते हैं, "अरविन्द ना केवल इस षड्यन्त्र में पूरी तरह डूबे हुए थे बल्कि वे इस संस्था के मस्तिष्क थे, वे नैतिक तथा बौद्धिक ऊर्जा के उत्स थे। अगर हम इस बात को स्वीकार कर लें और अगर हमें उन्हें दोषी सिद्ध करने का अवसर प्राप्त हो जाये तो उन्हें दोषमुक्त कर देना राजनैतिक आत्मघात होगा।"

बीचक्राफ्ट के फैसले का विरोध करने का निश्चय करके सरकार ने इस मामले में बम्बई के हाईकोर्ट से राय माँगी। इस मामले के कागज-पत्रों का मुआयना करने के बाद ऐसा लगा कि इस मामले की अपील की गयी तो बहुत सम्भव है कि श्री अरविन्द को दोषी ठहराकर उनके विरुद्ध कोई फैसला हो जाये। लेकिन कइयों को इस बात का भय था कि ऐसा कदम उठाने पर सारी जनता में असन्तोष की एक आग भड़क उठेगी, जिस जनता के लिए श्री अरविन्द एक तरह से "हीरो" थे। छह महीनों तक उन लोगों के बीच विचार-विमर्श तथा इस और उस पक्ष की बातचीत ही चलती रही और उसका परिणाम यह निकला कि फैसला सुनाने के बाद कानूनन छह महीने का विलम्ब हो जाने की वजह से उस मामले की अपील ना की जा सकी।

लेकिन फिर भी अंग्रेजों की मंशा अपने "सबसे अधिक भयंकर विरोधी" को मुक्त छोड़ने की कतई ना थी। श्री अरविन्द के क्रिया-कलापों को बन्द करने के अन्य साधन भी थे : उदाहरण के लिए अगर वे उनके लेखों, भाषणों या उनकी गतिविधियों में किसी प्रकार का कोई छिद्र लेख लें या छिपा अर्थ ढूँढ निकालें तो एक बार फिर से उनके विरुद्ध मुकद्दमा चला सकते थे, लेकिन अपने समस्त प्रयासों के बावजूद पुलिस ऐसे प्रमाणों को नहीं जुटा पायी जो श्री अरविन्द को दोषी ठहराते। बिना किसी न्याय के व्यक्ति को कहीं दूर जेल भिजवा देना – यह ब्रिटिश शासन-प्रणाली का एक नियम था जिसके अधिकार अंग्रेजों को भारत में प्राप्त थे यानी वर्तमान सरकार के विरुद्ध आचरण करने वाले या उसकी प्रवृत्ति रखने वाले किसी भी व्यक्ति को अनन्त काल के

लिए काल कोठरी में ठूंस देना। कई बार बंगाल के शासकों ने श्री अरविन्द पर इस निरंकुश नियम का उपयोग करना चाहा ताकि श्री अरविन्द को, जो उनके लिए खतरे की घण्टी थे, कार्यक्षेत्र से हटा सकें लेकिन वे आपस में एकमत ना हो सके। इन्हीं दिनों वाइसराय के एक सचिव ने लिखा था कि अगर सभी विप्लवी सींखचों के पीछे बन्द कर दिये जायें और अकेले श्री अरविन्द बाहर रहें तो वे फिर से एक नयी विप्लव-सेना तैयार कर लेंगे।

1908 की जुलाई में यह अफवाह फैली कि बहुत से राष्ट्रप्रेमियों को बन्दी बनाया जायेगा, इस सन्दर्भ में श्री अरविन्द ने अपने देशवासियों के नाम "कर्मयोगी" में "एक खुला पत्र" छापा जिसमें उन्होंने राष्ट्र के आदर्श की चर्चा की, कानून की हद में रहते हुए राजनीति के अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से दर्शाया। इसके बाद कुछ समय के लिए वे धमकियाँ शान्त हो गयीं लेकिन बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ बन्द नहीं हुई। इन गतिविधियों पर पूर्ण विराम लगाने के लिए सरकार ने यह निर्णय ले लिया कि सभी अवांच्छनीय व्यक्तियों को जेल में भर दिया जायेगा। इस बार 53 लोगों को जेल भेजने की बात थी जिनमें श्री अरविन्द भी थे। ऐसे समय श्री अरविन्द को अन्दर से एक आदेश मिला जिसका उन्होंने तुरन्त पालन किया और इससे पहले कि पुलिस उन्हें पकड़ पाती, 1909 की फरवरी में वे चन्दरनगर के लिए रवाना हो गये जो फ्रेंच राज्य में था।

अब श्री अरविन्द को एक भिन्न प्रकार की क्रान्ति में जुटना था – यह थी आध्यात्मिक क्रान्ति – जिसमें ना केवल भारत के लक्ष्य की बल्कि पृथ्वी के भविष्य की बाज़ी लगी थी।

15 अगस्त, 2019

श्री सुरेन्द्रनाथ ज़ौहर ‘फ़क़ीर’

अपने विषय में

मैं कौन हूँ और यहाँ कैसे आया :

ज्योंही मैं कुछ बड़ा हुआ तो मैंने अपनी माँ से पूछा- “माँ में कौन हूँ और यहाँ कैसे आया?”

माँ ने कहा- “पुत्तरा, तू मेरा बेटा है और मैंने तुझे जन्म दिया है।”

मेरी समझ में कुछ नहीं आया। ना मैं कुछ और पूछ सका और ना ही माँ मुझे कुछ समझा सकी।

मेरी जन्म भूमि वहाली :

जिस गाँव में मैंने जन्म लिया, उसका नाम था वहाली। वह खेवड़ा-लवण पर्वत माला के बहुत अन्दर जाकर घने पर्वतों के बीच स्थित था। तहसील – पिंड दादन् खाँ, जिला जेहलम जो अब पाकिस्तान के चंगुल में है।

वहाली गाँव एक पहाड़ी की छाती पर नगीने की तरह जड़ा हुआ था। वह ऐसे सुन्दर रमणीक और सुहावने दृश्यों से घिरा हुआ था जिसने मेरे मन और आत्मा को अभी तक मोह रखा है। अपने गाँव की स्थिति, पर्वतों और पाँव के नीचे के पत्थरों की याद, जिन पर मैं फाँदता हुआ चला करता था, अभी तक मेरी आँखों के सामने ताजा है जैसे कि मैं सिनेमा या टेलीविजन पर कोई दृश्यावली देख रहा होऊँ। अभी जी चाहता है कि किसी तरह उड़कर मैं अपने गाँव को देख आऊँ।

मेरे माता-पिता :

मेरी माँ भाँया- जिन्हें हम ‘बेबे’ कहते थे – बड़ी मजबूत और ताकत वाली थीं जो एक किसान खानदान में पैदा हुई थीं। मेरे पिता लाला काहनचन्द पंजाब के महकमा बन्दोवस्त में गिरदावर कानूनगो थे। शादी तो उस जमाने में बचपन में ही हो जाया करती थी। मेरी माँ की शादी भी 10-12 साल की आयु में हो गई थी। सुना है कि मेरे पिता मेरी माँ से एक साल छोटे थे।

भोली दाई :

गाँव में सबको जन्म देने वाली 'भोली दाई' थी। मुझे अभी तक याद है भोली दाई बहुत बूढ़ी किन्तु भव्य व्यक्तित्व की थी। वह जब भी चाहे झूमती-झामती हँसती-मुस्कराती हुई आती और दाँव लगाकर झट मुझे उठा ले जाती। इससे मेरी माँ को मुझे हर बार साबुन से खूब अच्छी तरह नहला-धुलाकर मेरे कपड़े बदलने पड़ते थे और दो-चार बूँद गंगाजल छिड़क कर मुझे शुद्ध-पवित्र करना पड़ता था, क्योंकि भोली दाई अछूत थी-जाति की भंगिन।

मेरा नामकरण और जन्म दिन :

मैं तो इस शरीर को कहते हैं परन्तु वह मैं तो कोई और ही है। इस मैं को पुकारने कि लिये मेरा एक नाम रखा गया। हाँ, मुझे मालूम है कि मेरा नाम सिकन्दरलाल था। इसी नाम से मैं बड़ा हुआ और इसी नाम से मैंने शिक्षा पाई।

जब मैं बड़ा हुआ तो मैंने अपनी माँ से कई बार पूछा कि 'माँ मेरा जन्मदिन और किस तारीख को हुआ था?'

माँ सदा यही जवाब देती थीं कि "पुत्तरा दिन और तारीख तो पता नहीं। प्रभात की बेला थी- ठण्डी-ठण्डी मीठी हवा चल रही थी। नन्हीं-नन्हीं बूँदे पड़ रही थीं- तब तूने जन्म लिया।"

पर इससे तो कोई मतलब नहीं निकला।

दो-तीन साल में गाँव के पंडित जी ने मेरा जन्मपत्री बनाकर दी। वह लंबी तो बहुत थी परन्तु उससे भी कोई ठीक मतलब नहीं निकलता था।

बहुत सालों बाद मैं पांडिचेरी आश्रम जा पहुँचा और भाग्यवश मैं माताजी से जिक्र कर बैठा। अपनी जन्मपत्री उनको दिखाई। दूसरे ही दिन माताजी के हाथ का लिखा हुआ एक सुन्दर कार्ड प्लास्टिक के लिफाफे में सिला हुआ मेरे निवास स्थान पर पहुँचा दिया गया। उस पर लिखा था-

"तुम्हारा जन्मदिन 13 अगस्त 1903 है।"

मेरा मुझमें कछु नहीं, जो कछु है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते, का लागत है मोर॥

15 अगस्त, 2019

मेरी बुनियादी शिक्षा

हमारे गाँव में एक स्कूल था प्राइमरी। कमरा भी एक था और अध्यापक भी एक। चालीस के करीब छात्र थे, उसमें एक मैं भी। उम्र 6 साल की थी।

रोते-चिल्लाते मैं स्कूल के लिये तैयार होता था। अपनी स्लेट-तख्ती बगल में और दवात-बस्ता हाथ में। स्कूल में पहुँचना भी समय पर सात बजे प्रात:। जो जरा भी देर से आता था उसकी तुरन्त पिटाई। सारा साल तो मुंशी जी बड़े प्रेम से प्यार से पढ़ाते थे परन्तु आखिर के महीनों में ना मालूम उन्हें क्या हो जाता था- एकदम कठोर, ढृढ़ और क्रोधी। एकदम सारी शक्ति पढ़ाने, सिखलाने में, याद कराने में लगा देते। डर के मारे सबकुछ याद करना पड़ता था, नहीं तो बेंत से पिटाई। गन्दी बातों और दुष्टता के लिये पिटाई इतनी होती थी कि नानी याद आ जाये। मुर्गा बनाकर भी टाँगों के नीचे हाथ निकालकर कान पकड़ाया जाता और इससे भी अधिक सजा देने के लिये पीठ पर बीस-बीस सेर के पत्थर रख दिये जाते थे।

मुंशी जी तेजी से धड़ाधड़ जोड़, घटाव, गुणा, भाग के सवाल पूछते चले जाते थे और हरेक को मुंशी जी की हथेली पर उँगली से लिखना पड़ता था। यदि जवाब ठीक हुआ तो मुंशी जी मीठी आवाज में कहते थे शाबाश! और यदि गलत हुआ तो एक थप्पड़। इस तरह पहली दो कक्षायें गाँव के स्कूल में निकलीं जहाँ मैं अपनी दादी के पास रहा करता था।

मेरी किश्ती:

मेरे पिता जी महक़मा बन्दोबस्त में गिरदावर-कानूनगो थे। परन्तु बन्दोवस्त एक चलता-फिरता महक़मा था। जहाँ दो चार गाँवों का बन्दोवस्त खत्म हुआ कि मेरे पिता जी को आगे किसी और गाँव में धकेल दिया जाता था। तो इस तरह उर्दू की प्राइमरी शिक्षा कक्षा 5 पूरी करने के लिये मुझे कई स्कूल बदलने पड़े।

बहाव:

यद्यपि धर्म की दृष्टि से हमारा खानदान तो सिख खानदान था परन्तु मेरे पिताजी आर्य समाज की ओर झुक गये थे, क्योंकि उन्होंने आर्य स्कूल में शिक्षा पाई थी और वहीं से उन्होंने मैट्रिक भी पास किया था।

15 अगस्त, 2019

मेरे पिता जी को पता लगा कि लाहौर में एक दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल है। किसी ना किसी तरह उन्होंने मुझे दयानन्द एंग्लो वैदिक हाई स्कूल के छात्रावास में दाखिल कराया। यहाँ मुझे एक साल हिन्दी अलग से पढ़नी पड़ी। फिर भी मार-पिटाई तो रोटी-दाल की तरह चलती ही रहती थी।

भँवर:

अब नवीं क्लास में मेरी किश्ती नए भँवर में फँस गई। मैं अपने स्कूल की हॉकी टीम के ग्यारह खिलाड़ियों में चुन लिया गया। हॉकी खेलने और टूर्नामेण्ट जीतने के लिये हमें छ: सात महीने लगातार छह-सात घंटे खेलाया जाता था। इसके बाद हमें डिस्ट्रिक्ट टूर्नामेण्ट में दूसरे स्कूलों के साथ खेलने के लिये महीनों लगातार स्कूल से बाहर जाना पड़ता था। इस तरह हमारी सब पढ़ाई मिट्टी में मिल गई।

अब आया कतल का दिन। मैं पहुँचा यूनिवर्सिटी में इम्तहान देने के लिये। जैसे-तैसे सारे विषयों के इम्तहान दे आया और थर्ड डिवीजन पास हो गया। इस तरह मेरी किश्ती पार हुई, गंगा नहीं लिये, यदि एक नम्बर भी कम हो जाते तो मैं फेल हो जाता।

फिर जब मैंने 1999 में डी. ए. वी. कॉलेज लाहौर में प्रवेश पा लिया तो यहाँ मुझको संस्कृत से पाला पड़ गया। सन् 1920 में महात्मा गाँधी का लाहौर में आगमन हुआ। उन्होंने अपना असहयोग आन्दोलन का प्रोग्राम जनता को समझाया। उसकी व्याख्या की कि वकीलों को अदालतों का बहिष्कार करना चाहिये और विद्यार्थियों को स्कूल-कॉलेज छोड़ देना चाहिये। उस विशाल सभा में लगभग एक लाख लोग रहे होंगे, जिसको महात्मा गाँधी ने सम्बोधित किया। उसमें मैं खड़ा हो गया और मैंने सीधे उनसे कुछ सवाल भी किये। सारे लोग हैरान हो गये क्योंकि मैं तो उम्र में अभी बहुत ही छोटा था।

महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के आह्वानके प्रत्युत्तर कॉलेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों में मैं शायद पहला या दूसरा ही था।

आजादी का बिगुल बज गया

अब हमने लाहौर के पंडित रामभज दत्त जी के निवास-स्थान पर ही पंजाब में पहले नेशनल कॉलिज की संयोजन की। हमारे प्रोफेसर शिक्षक थे एक प्रतिष्ठित व उच्चकोटि के धुरंधर विद्वान

15 अगस्त, 2019

नेता-गण यथा – पंडित रामभज दत्त, श्रीमती सरला देवी चौधरानी, स्वामी सत्यदेव, प्रो. पुरूषोत्तम लाल सोंधी और पंडित के. संथानम् जो लक्ष्मी इंश्योरेंस कंपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर भी थे।

यद्यपि मेरा परिवार तो निष्ठावान राज्य-भक्तों का था, विदेशी सरकार के पिट्ठुओं का, पर मैं तो राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में कूद ही पड़ा। शायद यही मेरे लिये नियत था। वास्तव में मेरे अन्दर एक आग थी- जो मुझे राह दिखा रही थी और मुझे ठेल भी रही थी। एक अग्नि-ज्वाला थी जो मेरा मार्गदर्शन कर रही थी और संचालन भी। जहाँ कहीं भी कुछ सशक्त व सामर्थ्यपूर्ण करने को होता था तो मैं उसमें एकदम कूद पड़ता था। मैंने अपनी पढ़ाई छोड़ी तो इसलिये कि मेरे भीतर एक प्रचण्ड अग्नि प्रज्जवलित थी जो पढ़ाई-लिखाई करने की आवश्यकता से कहीं अधिक तीव्र थी- तेज थी और जिसने मुझे असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ने को ठेल दिया- मानों मुझे मजबूर कर दिया।

इधर सरदार हरि सिहं जो हमारे विशाल कुनबे के तीन सौ लोगों के मुखिया थे- चीफ ऑफ पंजाब और गवर्नर कौंसिल के मेम्बर भी, उन्होंने मुझे और मेरे पिता जी को बुलाया और धमकी दी। परन्तु उस छोटी उमर में भी मैं इतने गुस्से में था और मुँहफट था कि मैंने उन्हें ढृढ़तापूर्वक साफ कह दिया- “मैं तो किसी हालत में आपसे सहमत नहीं हो सकता, आप जो चाहे कहें।” पर जो हो मेरे पिता जी ने मुझे वहाँ नहीं छोड़ा। जबर्दस्ती करके वे मुझे राजस्थान के तहसील रामगढ़ में ले आये जो अलवर रियासत में थी जहाँ वे अपनी सरकारी नौकरी कर रहे थे। सो वहीं प्राइमरी स्कूल में जो मेरे मकान के पास था मैं दिनभर वहाँ चला जाया करता था और बिना किसी वेतन के बच्चों को पढ़ा दिया करता।

एक दिन शाम को मेरे पिता जी कुछ लोगों के साथ बैठे हुये थे और मेरे ही बारे में बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा- “हमारे सारे परिवार में दो या तीन सौ लोग हैं, उनमें से हर एक ऊँचे से ऊँचे ओहदों (पदों) पर पहुँच गये हैं। और इधर एक मैं था, मैं भी आस लगाये रहता था कि मेरा बेटा भी उच्च शिक्षा प्राप्त करेगा और वह भी कुछ बनेगा।”

यह कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं और आँसू बह निकले। एकाएक मेरी ओर घूमकर मुझे ही संबोधित करते हुये बोले “अगर मेरे चार बेटों में से एक मर जाता तो भी मुझे उतना अफसोस नहीं होता। पर तुम्हारे कॉलेज छोड़ देने और पढ़ाई छोड़ देने ने तो मुझे बेहाल कर दिया है।”

दिल्ली में भाग्य निर्णायक आगमन

इससे मुझे भारी चोट और अन्दर धक्का लगा और बिना किसी से कुछ कहे-सुने मैंने उसी रात घर छोड़ दिया। मेरे पास पैसा-धेला कुछ था नहीं। मैं सीधा 'देहली' आ गया। यह बात है सन् 1929 की। दिल्ली में उतरते ही मैंने काँग्रेस दफ्तर की पूछताछ की और सीधा वहाँ जा पहुँचा और वहीं ठहर गया। तब फिर हफ्ते के अन्दर ही आर्य समाज की पूछताछ की तो मालूम हुआ कि यहाँ तो आर्यकुमार सभा भी है। डॉ. युद्धवीर सिंह उसके अध्यक्ष थे और मैं भी इसका मेम्बर बन गया।

सन् 1929 में स्वयंसेवक आंदोलन की हलचलें 'प्रिंस ऑफ वेल्स' की भारत यात्रा को लेकर शुरू हो गईं। जिसमें उनके स्वागत समारोहों का डटकर विरोध करना था। तब तक यह संस्था सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक टोली मात्र थी लेकिन 'प्रिंस ऑफ वेल्स' की भारत यात्रा ने इस आन्दोलन को देशव्यापी युवाशक्ति का स्वरूप दे दिया। अब वे हड़तालें करने लगे और विदेशी कपड़ों की होली जलवाने का आयोजन करने लगे।

मैं तो अभी बहुत छोटा था, केवल सत्रह और अट्ठारह वर्ष का। मेरा काम था सन्देश आदि, चिट्ठी-पत्री लाना, ले जाना व खादी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना और जहाँ जैसी आवश्यकता हो सहयोग व सहायता देना। मैं इसे दिन-रात एक –एक करके पूरी लगन के साथ करता था, क्योंकि मेरे भीतर एक आग धधक रही थी कि मैं देश के लिये क्या ना कर दूँ।

जीवन संघर्ष

इस तरह दिल्ली आने पर मैं आर्य समाज तथा देश की आजादी की लड़ाई में जुट गया, लेकिन पास में एक कौड़ी भी नहीं थी, जीविका का कोई साधन नहीं था इसलिये दिन को किसी लंगर या गुरुद्वारे में जहाँ मिलता खाना खा लेता और रात को कहीं फुटपाथों पर सो जाता। कभी-कभी तो लोग मुझे चोर-बदमाश समझकर अपने पास से दुत्कार कर भगा भी देते थे।

एक दिन बड़े ही संकोचवश मैंने आर्य कुमार सभा दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. युद्धवीर सिंह जी की पत्नी से कहा- "भाभी जी! आपकी बड़ी मेहरबानी होगी- यदि आप मुझे दो रुपये उधार दे दें। मैं आपका वह रुपया जल्दी ही वापस कर दूँगा।"

15 अगस्त, 2019

भाभी जी बड़ी ही भद्र महिला थीं, उन्होंने मुझे दो रुपये उधार दे दिये। जिससे मैंने सदर बाजार से कागज, कलम, पेंसिल, स्याही, कापी और निब आदि स्टेशनरी सामान की खरीद की। उन दिनों जमाना था सस्ता और दो रुपये में काफी सामान मिल जाता था। मैं कमर्शियल स्कूल के पास सड़क के किनारे प्रतिदिन एक घण्टा कागज कलम आदि स्टेशनरी का सामान बेचने लगा। जिससे मुझे एक आना (6 नये पैसे) प्रतिदिन मुनाफा मिल जाता था।

इस एक आने की दैनिक आय से मेरा गुजारा चल निकला। रोटी, मट्ठा और नमक यही मेरा रोज का आहार हुआ करता था। एक रुपये में बीस सेर आटा बाजार में मिल जाता था और हलवाई की दुकान से एक पैसे का मट्ठा ले लेता था जो मजे से दो तीन दिन के लिये पर्याप्त होता था। इस तरह लगातार तीन वर्षों तक मैंने अपना निर्वाह किया और कभी भी अपना खर्च दो रुपये प्रतिमाह से अधिक बढ़ने नहीं दिया।

दिल्ली आने के थोड़े ही दिन पश्चात् मेरी इच्छा टाइपिंग सीखने की हुई। इसके लिये जब मैं नई सड़क पर गणपत राम राधारमण के यहाँ गया तो पता चला कि टाइप सीखने की फीस दो रुपये मासिक देनी होगी। मेरे पास फीस के लिये पैसे तो थे नहीं, इसलिये उसकी एवज में मैंने उनके घर का काम-काज करना शुरू कर दिया। इस काम में झाड़ू लगाने, बर्तन साफ करने से लेकर घर गृहस्थी के छोटे-मोटे सभी काम शामिल थे।

उन्हीं के मकान में एक तंग और अँधेरी जगह ड्योढ़ी में एक गाय बँधी रहती थी। दिन भर काम करने के उपरान्त जब मैं थक जाता तब रात को एक टूटी चारपाई पर उसी गाय के पास सो जाता था। कभी-कभी तो सोते वक्त गाय मेरे ऊपर गोबर भी कर देती थी लेकिन फिर भी मैं अपनी ड्यूटी में हमेशा मुस्तैद रहा।

इस तरह अपने जीवन के दो वर्ष मैंने अत्यन्त अभाव और कठिनाई के साथ गुजारे और मुझे कितने ही पापड़ बेलने पड़े जिसकी लम्बी कहानी है। जला हुआ मोबिल ऑयल, साड़ियाँ, पान और चूना मैंने क्या-क्या नहीं बेचा, वर्षों टाइपिस्ट रहा और दूसरों की टहल चाकरी की, इस जीवन-संग्राम में मुझे दर-दर ठोकरें खानी पड़ी और कैसी-कैसी यातनायें तथा दुःख झेलने पड़े।

उन दिनों श्रद्धानन्द बाजार पर एक रोजगार दिलाने की संस्था थी। मैं वहाँ गया और मुझे टाइपिस्ट के तौर पर नौकरी मिल गई। मैंने दुकान के मालिक के साथ समझौता कर लिया कि दिन में केवल चार-पाँच घण्टे ही उनका काम कर सकूँगा क्योंकि मुझे तो काँग्रेस और आर्य कुमार

सभा के लिये काम करना होता है। वे मेरी शर्त पर राजी हो गये और मुझे प्रतिमाह 25 रुपये देने लगे। उन्होंने मेरे काम की इतनी कदर की कि मुझे दीवाली पर दस रुपये पुरस्कार बोनस में दिये और साथ में एक मिठाई का डिब्बा भी जो उन दिनों के लिहाज से यह विरला और असाधारण था।

उसी दौरान मेरे पिता जी देहली में मुझे खोजते हुये आये और आर्य समाज के माध्यम से मुझे ढूँढ निकाला। फिर वे मुझे लाला दीवानचन्द के यहाँ ले गये जो हमारे ही जिला जेहलम के ही गाँव के थे। लाला दीवानचन्द मिलिटरी सेना के लिये कोयला और नमक के ठेकेदार थे तथा दिल्ली में आर्य समाज के एक शक्ति स्तंभ थे। मेरे पिता जी के आग्रह पर लाला दीवनचन्द ने मुझे 50 रुपये मासिक वेतन पर टाइपिस्ट के पद पर अपने यहाँ रख लिया।

तदन्तर मैं अपना सामान गणपतराम जी के घर से उठा लाया और दीवान भवन में आ गया। दिन के समय मैं अपना बिस्तर दफ्तर में अपने काम की मेज के नीचे रख लेता और रात के समय वही बिस्तर मेज पर बिछाकर सो जाता और भोजन चावड़ी बाजार के एक ढाबे में करने लगा।

उन दिनों मैं दिन में अपने दफ्तर में टाइपिस्ट का काम करता और बड़े सुबह व देर रात तक काँग्रेस व आर्यकुमार सभा का काम करता था।

एक बार सरदार नानक सिंह को आवश्यकता पड़ने पर मैंने पूरी रात जागकर एक सर्कुलर की 1000 कॉपियाँ टाइप की इससे मुझे बहुत प्रशंसा और आदर मिला। यह मेरी एक आंतरिक गुण-धर्मिता थी कि मैं प्रत्येक कार्य को पूरी शक्ति और उत्साह से करता था।

दिल्ली मेरी कर्मभूमि

उस समय आर्य समाज के सबसे विशिष्ट और उत्कृष्ट नेता थे स्वामी श्रद्धानन्द। अन्य लीडर थे बाबा मिल्खा सिंह, लाला नारायण दत्त, सेठ रघ्घूमल और लाला बनवारी लाल। ये सभी आर्य समाज के क्रियकलापों और गतिविधियों में बड़ी सच्चाई और भक्तिभावना से भाग लेते थे।

डॉ. युद्धवीर सिंह के नेतृत्व में हम लोग, 'यंग मैन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन' की तर्ज पर 'आर्यकुमार सभा' का सशक्त और सुव्यवस्थित संगठन के रूप में निर्माण करने में लगे थे। डॉ. केशवदेव शास्त्री की अध्यक्षता में इसकी शाखाओं की स्थापना यू. पी., राजस्थान व पंजाब में हुई। थोड़ा समय बीतने पर मैं आर्यकुमार सभा दिल्ली का सेक्रेटरी चुना गया।

15 अगस्त, 2019

हम नियमित रूप से अपनी साप्ताहिक मीटिंग आयोजित करते थे और जब कभी जनता को कोई कष्ट या कठिनाई होती तो उस समय हम सच्चे मित्रों की भाँति उनकी मदद करने को हमेशा तत्पर रहते। मेलों, त्योहारों, उत्सवों, धार्मिक समारोहों और जनसभाओं की समायोजना व उनका कुशलतापूर्वक संचालन करते। अपनी 'आर्यकुमार' नामक एक पत्रिका भी हम लोग निकालते थे। हमने स्वामी दयानन्द की शताब्दी के अवसर पर आगरा में 'अखिल भारतीय आर्यकुमार सभा' का विशाल सेमिनार-विचार गोष्ठी सम्मेलन का सफल आयोजन भी किया था।

आर्य समाज एक क्रांतिकारी आन्दोलन था। यह परंपरागत हिन्दू समाज को सुधार कर इसको रूढ़िवाद और अंधविश्वासों से मुक्त करके उसे उसके वैदिक आदर्शों की प्राचीन और गौरवमयी स्थिति में पुन: प्रतिष्ठित करने के लिये कटिबद्ध था।

विदेशी कपड़ों का बहिष्कार

सन् 1930 में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने वाले प्रमुख कार्यकर्ताओं में से एक मैं भी था जिन्होंने दिल्ली में विदेशी कपड़ों का जमकर बहिष्कार करवाया। स्वामी श्रद्धानन्द की पोती बहन सत्यवती के तेज और वीरतापूर्वक नेतृत्व में यह प्रोग्राम चलता था। हमने विदेशी कपड़ों का बॉयकॉट समूचे चाँदनी चौक के सभी कटरों में कारगर ढंग से प्रभावी बनाकर प्रायोजित कर लिया था। यही विदेशी कपड़ों की थोक व फुटकर बिक्री का बाजार था। हमने इसके लिये अपना एक खुफिया तंत्र और अपनी गैर-सरकारी अदालत पंचायत का भी गठन कर लिया था। जो कोई भी हमारे कायदे-कानून तोड़ता था और विदेशी कपड़े बेचता था, हम उसे पंचायत के समक्ष पेश करते थे। यह पंचायत सौ-दो-सौ रुपये से लेकर दस हजार रुपये तक के जुर्माना कर सकती थी। इस भाँति कुछ कमेटी में जमा किये गये।

दिल्ली में विदेशी कपड़ों की होली

सन् 1929 के अक्टूबर माह में दिल्ली में यमुना नदी के तीर पर पंडित मोतीलाल नेहरू और पंडित मदन मोहन मालवीय जी की भव्य उपस्थिति में विदेशी कपड़ों की विशाल होली जलाई गई। जिसमें कितने ही लोगों ने अपने कीमती विदेशी वस्त्र उसमें होम करने को कुर्बान कर दिये थे। मेरा विवाह 1927 में हुआ था। इस अवसर पर मेरी पत्नी को उनके माता-पिता द्वारा विदेशी कपड़े दिये गये थे- वे सभी सामान विदेशी वस्त्रों की होली में दे दिये गये।

जब विदेशी कपड़ो के बहिष्कार ने जोर पकड़ा तब दिल्ली पुलिस ने मेरे खिलाफ गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला। मेरे विरुद्ध तीन मामले दर्ज किये गये। जब मुझे वारण्टों की खबर मिली तब मैं भूमिगत हो गया।

सन्1930 में पहले नम्बर का महत्वपूर्ण प्रोग्राम था: काँग्रेस के पूर्ण स्वराज के प्रतिज्ञा पत्र का दिल्ली के ख़ास-ख़ास स्थानों पर सार्वजनिक रूप से वाचन व पाठन। पूर्ण स्वराज की यह प्रतिज्ञा लाहौर काँग्रेस के प्रस्ताव पर आधारित थी जो पं0 जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में 26 जनवरी, 1921 को पारित हुआ था। रावी नदी के तीर पर उस ऐतिहासिक काँग्रेस अधिवेशन में मैं भी मौजूद था।

दिल्ली में पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञा का सार्वजनिक वाचन

दिल्ली में डिस्ट्रिक्ट काँग्रेस कमेटी के पदाधिकारियों की एक गुप्त सभा नई सड़क में हुई, जिसमें देश की राजधानी दिल्ली में पूर्ण स्वराज की प्रतिज्ञा को पढ़े जाने की रूप-रेखा की कार्य-प्रणाली तय करनी थी। उस मीटिंग में मैं भी बैठा हुआ था तब मेरी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की थी। उस समय मुझ में एक अद्भुत साहस, उत्साह व उच्च प्रेरणा का विद्युत संचार होने लगा और मैंने एकदम स्वत: सहज स्वभाव चालित हो अपने को प्रस्तुत कर दिया "मैं इस पूर्ण स्वराज की प्रतिज्ञा को पढ़ूँगा।"

यह निश्चय हुआ कि दिल्ली की जनता को सारे शहर से – विभिन्न भागों में चलकर छोटी-छोटी टोलियों में 'बड़शाह बुल्ला' स्थान पर इकट्ठा होना था, फिर वहाँ से जुलूस की शक्ल लेकर नई सड़क से होते हुये निकलना था।

मुझे इस जुलूस की अगुआई करनी थी, साथ ही मुझको पूर्ण स्वराज की प्रतिज्ञा का वाचन भी करना था और जनता से करवाना था। उस समय मेरे विरुद्ध पुलिस के तीन वारण्ट पहले से ही निकले हुये थे।

मैं एक कार में था। उस कार में मैं दो लोगों के बीच बैठा था- एक थे मेरे मामा जी व दूसरे थे एक मित्र। मैंने एक बड़ा ओवरकोट पहना और सिर पर पगड़ी बाँध ली और पूरी पोशाक पहन ली। जलाकर हाथ में सिगरेट पकड़ लिया। उधर मेरे मामा जी के हाथ में एक बड़ा शानदार सिगार था। पुलिस वाले जो सारे दिल्ली में छाये हुये थे उन्हें हमको देखकर सपने में भी यह सन्देह नहीं हो सकता था कि मैं काँग्रेस का वर्कर हूँ।

15 अगस्त, 2019

मैं पूरे जुलूस का घूम-घूम कर मुआइना कर रहा था व सतकर्ता व सावधानी के साथ सूचनायें व हिदायतें दे देकर निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर आगे-आगे बढ़ा रहा था कि कोई भी जत्था छूट ना जाये। इस तरह घंटा घर पहुँचने में हमको लगभग 7 घंटों का समय लग गया। मेरा ख्याल है कि जुलूस में 50,000 से अधिक लोग रहे होंगे। यह तो देखने लायक था। क्या दृश्य था। चारों ओर फैले विशाल जनसमूह में, सारे वातावरण में घोर उत्सुकता, उत्साह, उत्तेजना व अनिश्चय भरी दुविधा की हवा थी।

समय चार या पाँच बजे शाम का था। मैं बड़ी मुश्किल व मेहनत से विशाल भीड़ में से रास्ता काटता हुआ घंटाघर तक जा पहुँचा। ज्यों ही मैं वहाँ पहुँचा कि क्षणमात्र में भीड़ में छिपाया हुआ प्लेटफार्म सीधा खड़ा कर दिया गया। पलक झपकते ही मैंने सिगरेट, भारी ओवरकोट और मुशद्दी कुल्लेदार को खींचकर उतार दिया और अब मैं अपनी असली पोशाक शुद्ध खादी की शुद्ध सादी सफेद अचकन, चूड़ीदार पायजामा और गाँधी टोपी में था। झट से बिजली की तरह उछलकर मैं प्लेटफार्म पर चढ़कर खड़ा हो गया। जेब से पूर्ण स्वराज का प्रतिज्ञा पत्र निकाला तथा चुनौती और उत्साह से पूरी शक्ति के साथ उच्च स्वर में 'प्रतिज्ञा' का पाठन शुरू कर दिया। वातावरण में घोर उत्तेजना छाई हुई थी। उधर घेराबन्दी करने वाली पुलिस को जब तक यह अहसास हुआ कि यहाँ क्या हो रहा है, हम काफी काम कर चुके थे। यह जानते हुये दिल्ली का कोतवाल मेरी ओर लपक कर बढ़ा तो वहाँ तो एक जन-समुद्र लहरा रहा था जिसको चीरते-धकियाते लाठियाँ चलाते जब तक वह पहुँचा तो 'प्रतिज्ञा-पत्र' के वाचन का काम कामयाबी से पूरा हो चुका था।

दिल्ली के कोतवाल ने जिसका नाम अब्दुल वहाब था, अपने पुलिस दस्ते के साथ झपटकर मुझे पकड़ा, घसीटकर नीचे खींच लिया और पुलिस गाड़ी में बंद कर कोतवाली ले गये। वहाँ मैंने देखा कि सैकड़ों लोगों को ट्रकों और बसों में भरकर जेल में लाया जा रहा है।

मुझ पर मुकदमा चला। मेरे पहले केस में मजिस्ट्रेट ने निर्णय दिया- तुम्हें छ: महीने की सख्त जेल। दूसरे केस में उन्होंने कहा- बहुत दुख है मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकता, क्योंकि इस अभियोग में अब छ: महीने से बढ़ाकर दो वर्ष की सजा कर दी गई है। और अब उन्होंने दूसरा फैसला दिया "मैं तुम्हें नौ महीने की और सख्त कैद की सजा देता हूँ।" वहाँ एक तीसरा केस और आ गया। मजिस्ट्रेट उलझन में पड़ गया कि क्या करे। इसमें उसने मुझे पाँच सौ रुपये का जुर्माना या तीन महीने की सख्त कैद की सजा सुनाई।

उन तीन चार हफ़्तों के दौरान मेरी माँ 'बे' पेशी के दिनों मेरा खाना बनाकर कचहरी लाया करती थीं। तब जब-जब वे मुझे हथकड़ियों में देखती तो वे रोने लगतीं और पुलिस वालों पर खूब चिल्लातीं और बदअसीसें और शाप देने लगतीं कि "अरे तुम बरबाद हो जाओ। तुम्हारा यह हो जाये। वह हो जाये। कोई नाम-लेवा ना रहे।" आदि आदि। मैं उन्हें दिलासे देता, माँ आप इन लोगों को क्यों कोसती हो? ऐसा मत करें। इनका इसमें क्या दोष है। ये तो बेचारे ड्यूटि पर हैं। पर वह तो बद्दुआयें दिये बिना रह नहीं सकती थीं। बेचारी माँ।

मुलतान जेल में :

हम सबको मुलतान जेल भेज दिया गया। यह जेल हाल में ही बनकर तैयार हुई थी, तो यह 'नई जेल' नाम से जानी जाती थी। हम सबको छोटी-छोटी कोठरियाँ दे दी गयीं। हमारी खाटें सीमेंट की बनी थीं। उन पर एक गद्दा था जिसमें गेहूँ की बालें और भूसा भरा हुआ था। हमें जेल की वर्दी दे दी गई, जिसे पाकर हम बड़े खुश हुये।

मुलतान जेल में हम सदा कुछ ऐसा करते ही रहते थे जिससे जेल के अधिकारियों को परेशानी रहे – दिक्कतें पेश आयें – समस्यायें बनें। सो पहली पाबंदी मुझ पर सजा के तौर पर जो लगाई गई थी घर से पत्र-व्यवहार बंद। कुछ दिन बाद मेरे परिवार के लोगों से मुलाकातें भी बंद कर दी गई। थोड़े दिन और बीते तो मेरे हाथों में चार घण्टों के लिये हथकड़ी लगाई जाने लगी। इसी तरह एक महीना भी ना बीता होगा कि मुझे लोहे की 'डण्डा-बेड़ी' लगा दी गईं और उसी के साथ मुझे सोना पड़ता था। इसके बाद मुझे वार्ड में से निकाल लिया गया और तीन महीने के लिये कालकोठरी में एकान्तवास में डाल दिया गया। ऊपर से मुझे हर दिन अट्ठारह सेर गेहूँ चक्की पर पीसने को देने लगे।

एक बार जेलर को सैल्यूट करने से इंकार करने पर अगले दिन वहाँ टिकटिकी लाई गई और हमारी काल कोठरियों के बाहर रख दी गयी। यह शारीरिक यातना देने का ऐसा यंत्र था जिससे हमें बाँधा जाता और फिर हमारे नंगे शरीरों पर बेंत या कोड़े लगाये जाते। डण्डा-बेड़ी में तो हम पहले से ही थे जिससे हमारी एडियाँ बुरी तरह जख्मी हो चुकी थीं। इस तरह मैं मुलतान जेल में नौ महीने रहा और 1939 में गाँधी-इरविन समझौते के तहत रिहा हुआ।

15 अगस्त, 2019

श्रीमती दयावती की स्वाधीनता आंदोलन में सहभागिता और लाहौर जेल में कैद

सन् 1932 में मैंने लाला दीवनचन्द के यहाँ की अपनी नौकरी छोड़ दी और पंडित कन्हैयालाल पुंज के साथ साझेदारी में अपना व्यापार शुरु कर दिया। काँग्रेस और आर्य समाज के अपने कार्य के अलावा मैं अपने बिजनेस के कार्य में भी लगा रहता था।

मेरी पत्नी दयावती एक शाम घर से गायब हो गईं। वह चाँदनी चौक गईं, काँग्रेस का झण्डा उठाया और महिलाओं के एक जुलूस का नेतृत्व किया। बहुत रात बीतने पर मुझे मालूम हुआ कि वे तो गिरफ्तार हो गईं हैं। 12 अक्टूबर 1932 को उनको छ: महीने जेल की सजा सुनाई गई और उन्हें लाहौर जेल भेज दिया गया। यह सजा उन्हें 'द्वितीय सार्वजनिक अवज्ञा आंदोलन' में भाग लेने के कारण हुई।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

सन् 1940 में महात्मा गाँधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा कर भारत की जनता को स्वाधीनता यज्ञ में आत्माहुति देने का आवाहन किया। मैं उस समय गंभीर रूप से रोग ग्रस्त हो गया था और सूखकर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था। परन्तु मैं अपने देश के लिये आंदोलन में भाग लेने की अदम्य इच्छा को रोक नहीं सका और मैंने इसके लिये आवेदन पत्र भरकर काँग्रेस कमेटी के पास अनुमति के लिये भेज दिया।

इसी दौरान मेरे बच्चों के शिक्षक मुरारी लाल जी पाराशर जो मेरे साथ एक कुटिया में निवास कर रहे थे और मेरी देखभाल भी करते थे- उन्होंने इस अवस्था में मुझे जेल जाने से मना किया और स्वयं अपने आपको व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में प्रस्तुत कर दिया। इस पर उनको एक वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गयी और उन्हें रावलपिण्डी जेल में भेज दिया गया।

भारत छोड़ो आंदोलन

पुलिस से आमना-सामना और मुठभेड़ : एक दिन मैं बाबर रोड पर अपने सेंट्रल लेन के घर पर गया था कि मुझे खबर मिली कि दो सी. आई. डी. खुफिया पुलिस के आदमी बाहर खड़े थे। मेरी पत्नी की छोटी बहिन ने जो मुश्किल से ग्यारह या बारह वर्ष की थी उसने भोलेपन और सहजभाव से बता दिया कि मैं घर में हूँ। इस पर पुलिस वालों ने अपने अफसरों को मेरे घर में मौजूदगी के बारे में सूचना दे दी।

उसी दौरान मैं अपने घर के पिछले दरवाजे से निकल कर आया जहाँ दो और सी. आई. डी. के आदमी मुझे पकड़ने को खड़े हुये थे। मैंने उन्हें थप्पड़ मारे और ठोकरें मारता हुआ अपनी कार में जा बैठा और उसे ले उड़ा। मैं अपने देहात-घर पर जहाँ अब श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा की मुख्य इमारत है – वहाँ आ गया।

इसी दौरान एडिशनल सुपरिटेंडेट राय गोपालदास ने मेरा पीछा किया। ज्यों ही मैं अपने देहात-घर पहुँचा त्यों ही सामने से पुलिस इंस्पेक्टर मि. जैन सामने से पिस्तौल ताने आ गया और गोपालदास उसे बार-बार हुक्म दिया जा रहा था "इसे गोली मार दो। एकदम गोली मारो।" (शूट हिम ऐट वंस!) और वह मेरे पास आ गया और मुझे कहा कि मैं गिरफ्तार कर लिया गया हूँ।

मैंने उत्तर दिया- "ठीक है यदि मैं गिरफ्तार कर लिया गया हूँ तो मैं अपनी कार गैरेज में रख देता हूँ और तब मैं आपके साथ चल पड़ूँगा।"

पर वे तो मुझे धकियाने और मारपीट करने लगे। उन्होंने मेरी कमीज पकड़ ली और हाथापाई में उसे फाड़ दिया। इस पर मैंने मि. जैन का हाथ पकड़ लिया और मैंने उसकी पिस्तौल छीनना चाहा। पर उसने मेरे हाथ को दाँतों से काटकर चबा लिया। उधर गोपालदास अपने डंडे से बराबर मुझे मारे जा रहा था।

इसी समय मेरा ड्राइवर मंगतराम अचानक इस जगह पर आ निकला। उसने गोपालदास को पकड़ लिया और अच्छी मार लगाई। अब तो मैंने भी मि. जैन को दबोच लिया और उससे उसकी पिस्तौल छीन ली। अब हम उनको पकड़कर उस हॉल में ले आये जहाँ अब आश्रम का 'ध्यान कक्ष' है।

गोपालदास की साँसें ही उखड़ गई थी, वह मेरे पैरों को हाथ लगाने लगा और प्रार्थना करने लगा कि मैं उसको और मि. जैन को छोड़ दूँ नहीं तो उनकी नौकरी खतरे में पड़ जायेगी। मेरे पैरों में पड़कर मिन्नतें करने लगा कि मैं पिस्तौल वापस कर दूँ और उनको छोड़ दूँ।

तदन्तर हम लोगों ने एक भद्र पुरुषीय समझौता किया कि मैं अपने कार में अपने सेंट्रल लेन के घर जाऊँगा, वे अपनी शासकीय कार से मेरा पीछा करेंगे, मैं अपना बिस्तर घर से लूँगा फिर कनाट सर्कस के अपने ऑफिस में जाकर अपने लोगों को जरूरी हिदायतें देकर अपनी गिरफ्तारी देने के लिये तैयार हो जाऊँगा।

15 अगस्त, 2019

मैं अपने घर गया और अपना बिस्तर ले लिया। मेरी पत्नी और मेरे छोटे भाई गुरुबख़्श लाल मेरी गाड़ी में मेरे साथ बैठकर कनॉट सर्कस पर मेरे दफ्तर आ गये। जब हम वहाँ पहुँचे तो और दो लॉरी भर के बन्दूकों और पिस्तौलों से लैस पुलिसमैन वहाँ पहले ही मौजूद खड़े थे।

कनॉट प्लेस में जब मैं अपनी कार से उतरा और अपने दफ्तर की ओर जाने को बढ़ा तो वहाँ पर पहले ही गलियारे में लगभग तीन हजार लोग मौजूद थे जो बड़े उत्तेजित थे और सरकार व पुलिस के खिलाफ गुस्से में भरे हुये थे। सारी जनता प्रतिवाद करती हुई सामने आ गई। विरोधी स्वरों और नारों से वातावरण गूँजने लगा। हालात नियंत्रण से बाहर हो गये और पुलिस मेरी पत्नी और मुझको वराण्डों में घसीटने लगी। मेरी पत्नी ने मेरी टाँग पकड़ ली और उनको भी मेरे साथ वराण्डों में घसीटा जाने लगा। जब स्थिति तनावग्रस्त हो गई और हालात बेकाबू ही हो गये तब मजिस्ट्रेट ने मुझे गोली मार कर जान से मार डालने का आदेश जारी कर दिया। एक पुलिस अधिकारी ने अपनी पिस्तौल मुख पर तान भी दी किन्तु इसी बीच, पुलिस ने मुझे घेरे में ले लिया, मुझे खींचकर पकड़ा और पकड़कर पुलिस गाड़ी में धकेल कर डाल दिया।

यह सारी पुलिस कार्यवाही सुपरिटेंडंट पुलिस सी. आई. डी. मि. आर. जी. मैल्लर की लीडरशिप में की गई थी। जब हम पुलिस स्टेशन पर पहुँचे तो मि. मैल्लर ने मेरे ड्राइवर को बड़ी बुरी तरह मारा पीटा और फिर मुझको भी मारने लगा। परन्तु मैंने उसे चेतावनी दी, "देखो बेशक हमारे हथकड़ियाँ लगी हुई हैं पर तुम ध्यान रखना कि मेरी टाँगें अभी आजाद हैं, तुम्हें ऐसी ठोकर मारूँगा कि तुम नीचे आ गिरोगे।"

तब हमें एक कोठरी में डाल दिया गया। मेरा खाना और बिस्तर नहीं जाने दिया गया। मुझे पेशाबघर तक नहीं जाने दिया। मेरी गिरफ्तारी और एडिशनल पुलिस सुपरिटेंडेट से जो मेरी मुठभेड़ की खबरें अखबारों में छपीं तो अगले दिन मेरे मित्र व हमदर्द लोग तो मुझसे मिलने आये ही, साथ ही बीसियों अँग्रेज की औरतें और आदमी भी मुझे देखने पुलिस स्टेशन आये।

मेरी गिरफ्तारी के बाद पुलिस अधिकारी मेरे व मेरे सहयोगी कर्मचारियों के विरुद्ध हत्या की कोशिश के मुकदमें गढ़ने लगे। देहात-घर जाकर उन्होंने मेरे सभी नौकरों व कर्मचारियों को गिरफ्तार कर लिया और हमारी कार्पेंट्री के साजो-सामान-आरी, आरे, हथौड़े और लाठियाँ आदि अपने कब्जे में ले लिया। एक पुलिस मैन ने तो मुझे यह भी बताया कि किस तरह गोपालदास ने अपनी कमीज और बनियान उतारकर मेज पर रख दिया, फिर आरी से खुद अपनी पीठ

खुरची, थोड़ा खून रंगे कपड़ों को सबूत के तौर पर पेश किया और एक डॉक्टर से झूठा मेडिकल सार्टिफिकेट भी बनवाकर ले लिया कि यह चोटें आरी द्वारा लगाई गई हैं।

कुछ ही दिन के बाद मुझे एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि. डिस्ले की अदालत में पेश किया गया। तब तक इस मुठभेड़ की कहानी राय साहब गोपालदास की ही जबानी उन्हें मालूम हो चुकी थी जो उन्होंने मि. डिस्ले को घटना वाले दिन ही बताई थी।

मुकदमे की पहली सुनवाई जेल के बाहर के एक कमरे में हुई थी, मुझे घसीटा जा रहा था, मुझे हथकड़ियाँ लगाई हुई थीं। मेरी माता जी, मेरी पत्नी और रिश्तेदार बाहर खड़े हुये थे। जैसे ही उन्होंने देखा वे बिलखकर रोने लगे। यह केस दो वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा।

एक बार मुकदमे के दौरान मैं बहुत धर्म संकट में पड़ गया। पुलिस के डिप्टी सुपरिटेंडेंट पंडित सीताराम ने भूल से अपने बयान में गलती कर दी, उससे मुझ पर सरकार द्वारा चलाया गया सारा मुकदमा झूठा पड़ जाता था – और इसमें मुझे लाभ था।

जब मेरे बयान का समय आया तब स्थिति यह थी कि यदि मैं सच्चा बयान देता हूँ तो पुलिस के चलाये सब झूठे मुकदमे सच्चे साबित हो जाते हैं और अगर मैं डिप्टी सुपरिटेंडेड पुलिस की भूल का फायदा उठाता हूँ तो मुझे झूठा बयान देना पड़ता जो कि मेरी आत्मा मंजूर नहीं करती थी।

ऐसे पशोपेश और धर्म-संकट की अवस्था में मैंने श्री अरविन्द को मुझे सही रास्ता दिखाने के लिये विस्तार से चिट्ठी लिखी। जैसे ही पुराणी जी पढ़ने लगे कि श्री अरविन्द ने पुराणी जी के हाथों से मेरी वह चिट्ठी छीन ली और खुद पढ़ने लगे। खूब हँसे। और बोले कि सुरेन्द्रनाथ को लिखो कि सुरेन्द्रनाथ को पुलिस की भूल और कमजोरियों का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। सच्चाई समग्रता व सम्पूर्णता में देखी जाती है ना कि खण्ड रूप में – टुकड़ों में।

श्री अरविन्द के मार्ग-निर्देशन की प्राप्ति होने पर जिरह के समय मैंने अपना बयान ध्यानपूर्वक दिया और पुलिस के बयान में व्यक्त असंगतियों का पूरा लाभ उठाया। आखिरकार दो साल के बाद यह केस मेरे पक्ष में निर्णात हुआ और हम सब बरी कर दिये गये। मजिस्ट्रेट मि. डिस्ले ने मेरे खिलाफ झूठे मनगढ़त इल्जाम लगाकर झूठे सबूत बनाने के लिये पुलिस को करारी झाड़ लगाई – कानूनी कोड़े भी बरसाये।

इस प्रकार यह केस लम्बी पीड़ा, अत्याचार और असह्य कष्ट के बाद अंत को प्राप्त हुआ।

15 अगस्त, 2019

काम

करुणामयी

"लक्खां मन्न कम्म पए होए है न पर तैनूं अपनी गप्पां तों फुरसत नहीं है।"

झल्लाकर पूज्य चाचा जी कितनी ही बार कह उठते थे कि "लाखों मन काम पड़ा हुआ है पर तुझको तो गप्पों से ही फुरसत नहीं है।"

मैं सोचती कि आखिर जो यहाँ आया है-आयी है, कुछ आशा से ही तो। पूज्य चाचा जी तो अपनी शक्ति-समय नहीं दे सकते। कैसा तो उनका स्वास्थ्य है, धैर्य भी छूट जाता है। चलो एक प्याले चाय से, दो सहानुभूतिपूर्ण मीठे बोल से ही यदि कोई अपना दुःख दर्द कुछ समय को ही भूल जाये तो क्या यह मेरा फर्ज नहीं है।

और कभी ऐसा भी होता कि दर्द की पाती जो लेकर आया होता उसका पुलिंदा ही खुल जाता। तब वापस लौटने पर एक ओर तो सार्थकता का भाव होता (कि जो पूज्य चाचाजी ने दिया उसी प्रकाश से किसी के अँधियारे जीवन में एक चिनगी रख आई हूँ या नन्हीं दीपज्योति जला आई हूँ।) और साथ ही दूसरी ओर अपराधी भाव आ जाता कि देखो पूज्य चाचा जी को वहाँ छोड़कर चाय पी रही हूँ। किसी की बातें सुन रही हूँ और कौन जाने कि मेरे वहाँ न होने से पूज्य चाचा जी को क्या असुविधा हो रही हो-क्या कुछ दो लाइनें ही सही 'कर्मधारा' के लिए 'कालबियोण्ड' के लिए लिखवा देते और सब पाठकों को भागवत हास के द्वारा तरोताज़ा ही कर देते। सो वह भी रह गया।

तभी पूज्य चाचा जी की दीवारों को भेदती बुलंद आवाज आती-"सदा अपने से पूछा करो कि मेरा आज का क्या काम रहा। डायरी बनाओ तब तो कुछ पता चलेगा"

मैं अचकचाकर कुछ बताने को भी होती पर बताने को वैसा ठोस था भी क्या जो बतलाती। चुप रह जाती। भगवान से कहती-श्रीमाँ से कहती-"मुझसे पूज्य चाचा जी की हानि हो जाये ऐसा न होने देना। चाहे कुछ भी कर देना"

15 अगस्त, 2019

और मैं अपने कागज़-पत्तर उनके कमरे की मेज़ से उठाकर दफ़्तर में ले जाने को होती कि चलो कुछ चिट्ठियाँ ही निबटा लूँ तो तभी पूज्य चाचा जी की पैनी दृष्टि उनको एक झोंक में ही तोल लेती और मेरा उतरा हुआ उदास मुँह देखकर स्वयं ही करुणा विगलित हो जाने पर सच्चे शिक्षक की भाँति धीरज और झल्लाहट में श्रुतियों को सँवारकर कह उठती-"काम को धक्का दो नहीं तो कभी होगा ही नहीं।"

काश कि मैं कुछ समझ पाती। कुछ भी क्या एक प्रतिशत भी कर पाती (जो पूज्य चाचा जी की ही शब्दावली है) तो मैं क्या से क्या हो जाती। कितनी निधियाँ पूज्य चाचा जी के द्वारा इस स्थूल जगत में अद्वितीय देनों के रूप में ढलकर मानवता के लिए मार्ग-दर्शन-चिन्हों का काम देतीं।

पर...

15 अगस्त, 2019

तारा दीदी का जन्मदिन

श्री अरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा में 5 जुलाई 2019 को तारा दीदी का 83 वां जन्मदिन मनाया गया। इस अवसर पर भूमिमंगलम (वृक्षारोपण) कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत सुबह समाधि लॉन के समीप तारा दीदी द्वारा कल्पवृक्ष लगा कर की गई. आश्रमवासीयों के साथ, मदर्स इंटरनेशनल स्कूल के पूर्व छात्र छात्राओ एवंमअतिथियो ने भी वृक्षारोपण कर समारोह में उल्लास पूर्वक भाग लिया ।

HAPPY BIRTHDAY

15 अगस्त, 2019

आश्रम के अन्य कार्यक्रम

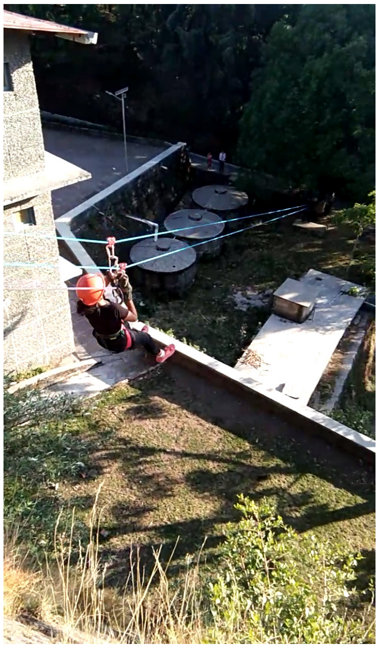

योगा दिवस 2019